श्री वेङ्कटेश्वरकविना विरचितम्

उन्मत्तकवि कलश प्रहसनम्

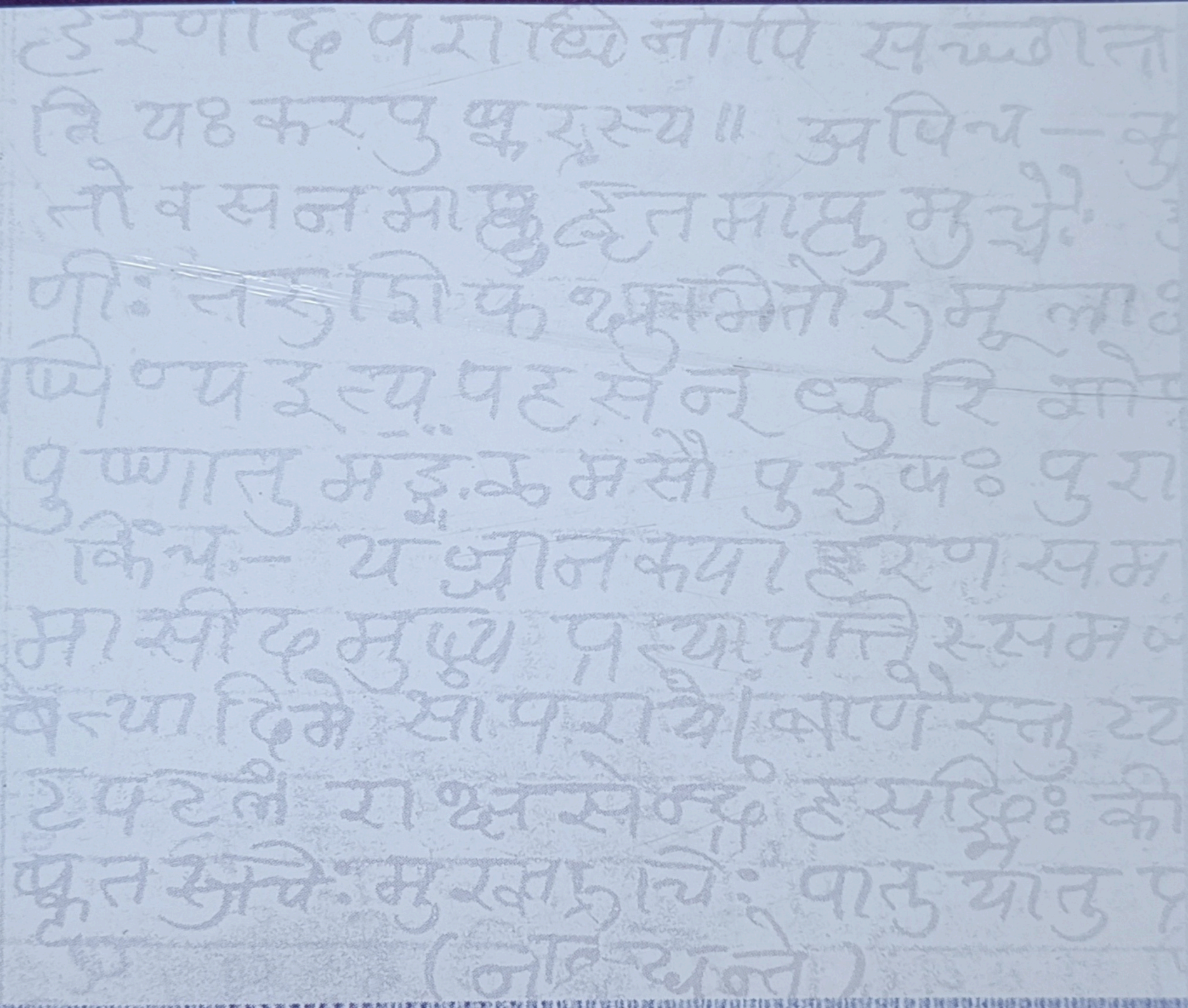

सम्पादनम्

शिवशङ्कर त्रिपाठी

श्री वेङ्कटेश्वरकविना विरचितम्

उन्मत्तकवि कलश प्रहसनम्

•

सम्पादनम्
शिवशङ्कर त्रिपाठी

•

भरतीय मनीषा-सूत्रम्
दारागंज, इलाहाबाद - २११ ००६

ISBN : 978-81-908890-1-8
प्रथम संस्करणम् : संवत् २०६५ विक्रम
प्रकाशनम् : भारतीय मनीषा-सूत्रम्
दारागंज, इलाहाबाद - २११ ००६
मूल्यम् : १५०/- रुपये मात्र
© : शिवशङ्कर त्रिपाठी
मुद्रणम् : एकेडमी प्रेस
दारागंज, इलाहाबाद - २११ ००६

VENKTESWAR KAVINA VIRCACITAM

UNMATTA KAVI KALAŚA PRAHASANAM

•

SAMPADANAM

SHIV SHANKER TRIPATHI

•

BHĀRATĪYA MANĪṢĀ SŪTRAM

DĀRĀGANJ, ALLAHABAD - 211 006

ISBN : 978-81-908890-1-8
First Edition : Samvat 2065 Vikram
Published : Bhāratīya Manīṣā Sūtrām
Daraganj, Allahabad - 211 006
Price : Rs. 150/- Only
© : Shiv Shanker Tripathi
Printed : Academy Press
Daraganj, Allahabad - 211 006

प्रहसनस्यास्य पाण्डुलिपेर्विषये -

●

पाण्डुलिपिरस्य प्रहसनस्य। तञ्जौर नगरस्थिते। सरस्वतीपुस्तकालये। संरक्षिताऽस्ति। पुस्तकालयोऽयं। अष्टादशशताब्द्या पूर्वार्द्धभागे। प्राच्यसाहित्यसंरक्षणभावनाभिभूतेन। सरफोजी नामधेयेन गुणगणानामागारेण। साहित्यसंस्कृतिकलानांसंवर्द्धकेन। नृपवरेण संस्थापितः। अत्रास्मिन् पुस्तकालये। विविधविषयाणां हस्तलिखितप्रकाशितानाञ्च। ग्रन्थानां सङ्ग्रहः। अस्येव पुस्तकालयस्य निदेशकमहानुभावानाम्। महत्यानुकम्पया। प्रहसनस्य पाण्डुलिपेर्प्रतिच्छविप्रतिः (फोटोस्टेट प्रति)। मयोपलब्धा।

प्रतिरीयम्। ताळपत्रेषु लिखिता। प्रतेरस्यां ६० पत्राणि। प्रत्येकेषु पृष्ठेषु विंशति पङ्क्त्यः। लिपिरस्या आन्ध्री। अत्यस्पष्टाश्च। स्थाने-स्थाने कीटजग्धाऽपि।

पुष्पिकायाम्। सुभगानन्दम् प्रहसनम्। इत्यपि लिखितम्।

कदाचिदिदमस्य प्रहसनस्यापरनामम्।

●

कविकलशविषये किञ्चित्

•

'उन्मत्त कविकलश प्रहसनम्' इदं कवि वेङ्कटेश्वरस्य रचना। निर्दिशति यथा सूत्रधारः 'हस्तगत माणिक्यमापणे मृग्यते। गुण विशिष्टमस्मदवंशमेव कवेरकुमारिका तरलतरङ्गताण्डवित् शीकरासार शीतलोपशल्यमणलूरग्रहारहारनायकमणे-षड्दर्शनीसागरनिशाकरस्य षड्भाषासार्वभौमस्य प्रतिदिनं प्रबन्धनिर्माणपरमेश्वरस्य धर्मराजमनीषिणो भागधेयपरिणामेन वेङ्कटेश्वरकविना गृहीतवस्तुविरचितं 'उन्मत्तकविकलशंनामकृतं सकलहृदयानन्दविकसनं प्रहसनम्'।

कविरयं तञ्जोरराज्ये साहजीसरफोजी नरपतयोर्सभायां कविरूपेण प्रतिष्ठितः आसीत्। नृपयोर्राज्यकालावधिःसप्तदशशताब्द्या उत्तरभागतः अष्टदशशताब्दया प्रारम्भ भागोऽस्ति।

कवि कलशः– कस्य देशस्य निवासी, कस्य वा कुल प्रभवोऽलङ्कारभूतो आसीत्, ऐतिह्यमज्ञातम्। कविकलशोऽयं 'कलुष' नाम्नाऽपि विशेषतः महाराष्ट्रसामाजिकजनेषु ख्यातिर्लब्धवान्। कारणं हेतुर्वाऽस्या ख्याते र्न ज्ञायते। कवि कलशोऽयं छत्रपति शिवाजी सूनो 'सम्भाजी नृपस्यापरनामो शम्भुराजस्य राजनयधर्मानुशासको 'छान्दोग्य-अमात्यः, परामर्शकश्चासीत्। छान्दोग्यामात्यकलश-निर्देशतः एव शम्भुराज (सम्भाजी) महाराजो सिंहासनमवाप्तुं रायगढं प्रति प्रस्थितवान् –

एनामनलसोह्येष कलशोदीरितां गिरम्।
निशम्य रम्य विषयां प्रयाणाभिमुखोऽभवत्।।

यथा परमानन्द काव्ये–

कलश उवाच।

स्थितोऽसि चिररात्राय हिताय जगतामिह।
महामतेऽतिमहते द्विषतामहिताय च।।

अथ राज्याभिषेकाय स्वाय रैङ्गिरिमात्रज।
भजतां राज्यलक्ष्मीस्त्वां सङ्गतां त्वं च तां भज।।

सद्यः शिववियोगोत्थं वैक्लव्यं विजिहासती।
तत्र त्वां क्ष्मामणे सिंहासनलक्ष्मीः प्रतीक्षते।।

गुरौ गते शिवे राज्ञि लघुतां लघुतां गताः।
त्वया भजन्तु गुरुतां भूधरा रैधरादयः।।

सूनुं मूर्धाभिषिक्तस्य त्वामनूनं गुणश्रिया।
अनूचानजनेनोच्चैस्तत्तत्तीर्थाहृतैर्जलैः ।।

महाभाग महाभागं भगीरथमिवानघम्।
तत्राभिषिच्यमानं द्रागानन्दभरमेदुरः।।

आभ्यां दृग्भ्यां कदा द्रष्टेत्यभिलाषमहो वहन्।
निद्राणोऽपि महाराज निद्रां नोपलभेन्वहम्।।

एनामनलसो ह्येष कलशोदीरितां गिरम्।
निशम्य रम्यविषयां प्रयाणाभिमुखोऽभवत्।।

तत्र सेनां सुमहतीं न्यस्य युद्धाभिमानिनीम्।
स प्रास्थितपृथुप्रख्यः सत्रानीकेन भूयसा।।

अथ तस्याध्वनीनस्य भवन्दुन्दुभिरध्वनि।
दिक्तटानधिकाभ्यर्णेन यः कर्णे जयध्वनिः।।

ततः कतिपयैरेव दिवसैर्भूदिवस्पतिः।
सुखान्यनुभवन्नुच्चैर्वासवीं वसतिं प्रति।।

उपलभ्यालाषार्हविषयोऽतिशयोज्वले ।
बलेनात्मजुषा चान्तकल्पान्तहुतभुक्बले।।

प्रतापिनि प्रतापाद्रौ पृथुलोन्नतमेखले।
स्थितामास्थावतीं तुष्टामुत्सृष्टतुलजापुराम्।।

शिवराजस्य हस्तेन विध्वस्ताफजलासुराम्।
सद्यः प्रसादाभिमुखीमुच्चप्रासादमध्यगाम्।।

तत्तदाभरणद्योतद्योतिताभ्यर्णदीपिकाम् ।
अतुलां तुलजां नाम वरदां परदेवताम्।।

सिंहपृष्ठागतामष्टभुजामभयदायिनीम् ।
पुरोहितेन सहितः सहितः प्रोल्लसन्मनाः।।

स्वदृशोर्गोचरीकृत्य सर्वदां सर्वमङ्गलाम्।
अमंस्त स्वाय राज्याय सर्वमङ्गलमङ्गलम्।।

चन्दनागरुकाश्मीरक्षोदेन मृगनाभिना।
वज्रवैदूर्यमाणिक्यमुक्तामणिभिरक्षतैः ।।

सौगन्धिकैरनेकैश्च सुमनोभिः सुगन्धिभिः।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैरुपहारैश्च भूरिभिः।।

अभ्यर्च्य देवीमभ्यर्च्यामुषितोऽपि च तां निशाम्।
यथोचितव्रताचारपरः परपुरञ्जयः।।

पुरः प्रयातुमुदितो मुदितो मोदितद्विजः।
नासीरध्वनदुद्दामद्रवद्दानद्विपत्रजः ।।

घोरपत्तिघटोद्धोषत्सङ्घट्टितककुप्तटः ।
सोऽद्राक्षीद्रैङ्गिरिं दूराद्विदूराद्रिरेवागतः।।

अथ धरमधिरुह्य तं प्रतापी सह पटुना ध्वनितेन दुन्दुभीनाम्।
सपदि सदसि पश्यते जनाय व्यतनुत मङ्गलमात्मदर्शनेन।।

परमानन्दकाव्यम्:[१] *पृ. ४०-४१*

विविधशास्त्रपारङ्गत कलशो काव्यकलानिपुणोऽप्यासीत् नास्ति संशयः। हरिकविना सङ्कलितायां सुभाषितहारावल्यां बहूनि संस्कृत पद्यानि कृष्ण पण्डितानाम्' इति सङ्केतेन समायोजितानि वर्तन्ते। अनेनेवकृष्ण पण्डितेन हरिकविं शम्भुराजचरित्राख्यस्य महाकाव्यस्य प्रणयनायादेशं प्रदत्तम्। नान्योऽयं कृष्णपण्डितः, अपितु कविकलश एव –

तस्मात्साधुपदाब्जसेवनपरः सामे हरिश्चाभव्
श्रीनारायणपादपङ्कजसुधासेवाप्त वाग्वैभवः।
यः श्री शम्भु महीपतेरपि गुरोस्तस्यैवकृष्णाख्यया,
विख्यातस्य निदेशतो वरमिदंकाव्यं व्यधाद्द्भुतम्।।

– शम्भुराजचरितः सर्ग १२/१७२

– शिवशङ्कर त्रिपाठी

●

---

१. प्रकाशितम् (ओरियम्टल सीरीज, बड़ौदा)

संभा का गुरु कवि कलश, कौन था?

●

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि कोई 'कलश' नाम का व्यक्ति शिवाजी के पुत्र संभाजी का संरक्षक रहा। इतना ही नहीं वह बाद में संभाजी का राजनीतिक गुरु और शासन-कार्य का मंत्री बना। सबसे उल्लेखनीय बात है कि वह कलश संभाजी के ही साथ प्राणदंड का भागी भी हुआ। बस, इससे अधिक जानकारी देने में इतिहास मौन है। कैटलागस **कैटलागारम** में उल्लेख मिलता है कि कवि कलश अथवा कवि कलुष 'शंभुराज चरित' में चर्चित तथा हरिकवि के ग्रन्थ 'सुभाषित हारावली' में उद्धृत कृष्ण पंडित से भिन्न नहीं है। (वाल्यू. ३ पृष्ठ २६९)। **शिवचरित्र** साहित्य के खंड तीसरे में कवि कलश को संभा का सर्वाधिक प्रिय एवं विश्वसनीय अमात्य, धर्माभिमानी, कर्मकांडपरायण, सत्यसंध, समस्त राजकार्य धुरंधर, विश्वासनिधि राजामात्य, राजश्री और छन्दोगामात्य के रूप में निरूपित किया गया है। निश्चित ही इन सभी गुणों का प्रभाव संभाजी पर पड़ा और उसने अपने जीवनकाल में कवि कलश को अपना गुरु बनाया होगा।

यह कवि कलश काव्य प्रतिभा का धनी और राजनीति का पंडित था। इसके निवासस्थान, कुल एवं पूर्ण नाम की जानकारी आजतक नहीं हो सकी, जो हमारे लिए दुर्भाग्य का विषय है। **खफीखां** की **फारसी तवारीख**, संस्कृत इतिहासग्रन्थ '**अजितोदय**' और **भीमसेनरचित** '**तारीखे दिलकशा**' के विवरणों से इस कवि का कुछ इतिवृत्त मालूम होता है जो उसके जीवन-चरित के शिवपक्ष को उजागर कर देता है : किस निर्भीकता तथा विश्वसनीयता के साथ उसने संभाजी की रक्षा की, ऐसा गुरुतर दायित्व स्वीकारा और कितनी सजगता के साथ निर्वाहा, शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् उनके राष्ट्रीय आदर्शों की धरोहर को संभाजी के माध्यम से कितनी निपुणता के साथ संजोया। एक गुरु, एक सुहृद् सखा के रूप में किस दृढ़ संकल्प के साथ उसने औरंगजेब जैसे निर्मम शासक के समक्ष संभा सहित उपस्थित होने पर '**तुअ तप तेज निहार के तखत तज्यो अवरंग**' ओजपूर्ण काव्य पंक्ति का उच्चारण किया और भारतीय 'स्व' को प्राणों की आहुति देकर सदा-सदा के लिए प्रतिष्ठित कर दिया।

यह कवि कलश प्रतिभा संपन्न कवि था, इस कथन में रंचमात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता। यह अलग बात है कि उसका काव्य आज तक अध्येताओं को प्राप्त न हो सका है। संस्कृतभाषा में तो नहीं परन्तु हिन्दी में दो ऐसे छन्द आज तक प्राप्त हुए हैं जिनमें 'कलश' का स्पष्ट उल्लेख है। इनमें से एक छन्द 'मिश्रबन्धु विनोद' में तथा दूसरा दतिया राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित ग्रन्थ (विभिन्न कवियों के छन्द संकलित है) में प्राप्त होता है। दोनों ही छन्दों की भाषा तथा उनके भाव रीतिपरक है :

अंग अरसौहैं छबि अधरन सोहैं, चढ़ि
आलस की भौहें धरे आभा रतिरोज की।
सुकवि कलश तैसे लोचन पगे है नेह,
जिनमें निकाई अरुणोदय सरोज की।
आछी छबि छाके मंद मंद मुसकान लागी
बिचल बिलोकि तन भूषन के फौज की।
राजे रदमंडली कपोलमंडली में मानो
रूप के खजाने पर मोहर मनोज की।

– 'मिश्रबन्धु विनोद'

एकरति केलि कला कोविद कमलमुखी
प्यारे को वियोग बडवानल लौ बार्‌यो है।
तापरि तमकि तेज भारे तरु तापन के
पंचाशरहि को बेझ्‌यौ करि डार्‌यो है।
चन्दन चढ़ाये कवि कलश कमल इन्दु
और सब सीरेई उपायि करि हार्‌यो है।
कैसे जीयैं बापुरो पथिक घर ओट जाहिं
काननि लौं खैचि के कटाक्ष बान मार्‌यो है।

दतिया राजकीय पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थ के उद्धृत छन्दों में आगत 'कवि कलश' शब्द निश्चित ही नाम परक है। कवि रीतिकालीन कवियों की भावभूमि पर खड़ा है। अनुमानतः कवि कलश ने रीतिपरक किसी ग्रन्थ की भी रचना की होगी। यह भी उसकी एक विशेषता थी कि संभाजी उसको सदा अपने निकट रखता और उससे ही प्रभावित होकर वह स्वयं भी हिन्दी में कविता लिखने लगा था।

भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीटयूट पूना में श्रीहरिकवि विरचित एक संस्कृत महाकाव्य है **'शंभुराजचरित'**। बारह सर्गों के इस महाकाव्य में शिवाजी के उत्तराधिकारी संभाजी का जीवनचरित वर्णित है। कवि कलश संभाजी के राजनीतिक गुरु के रूप में इतिहासविदों द्वारा मान्य है। इन्हें बाद में महाराष्ट्र समाज 'कवि कलुष' नाम से भी सम्बोधित करने लगा था। **'शंभुराजचरित'** महाकाव्य के रचयिता **हरिकवि** ने काव्य रचना का कारण शंभु महीपति के गुरु किसी **कृष्ण** नामक विद्वान् पंडित का निदेश बताया है :

तस्मात्साधुपदाब्जसेवनपरः सोयं हरिश्चाभव
श्रीनारायणपादपंकजसुधासेवाप्तवाग्वैभवः।
यः श्रीशंभुमहीपतेरपि गुरोस्तस्यैव कृष्णाख्यया,
विख्यातस्य निदेशतो वरमिदं काव्यं व्यधादद्भुतम्।।

– शंभुराजचरित। सर्ग १२।१७२

कवि का कहना है कि जो महाराज शंभु अर्थात् संभाजी का भी गुरु था, उसी **कृष्ण** नामक विख्यात जन के निदेश से इस श्रेष्ठ काव्य का जो स्वयं में एक अद्भुत रचना है प्रणयन किया। **हरिकवि** ने **'सुभाषित हारावली'** में कृष्ण पंडित नाम वाले कवि के कई छन्द संकलित किये है। उन संस्कृत छन्दों में व्यवहृत भाषा और गुम्फित भावों से प्रतीत होता है कि निश्चित ही यह एक रससिद्ध कवि रहा होगा। उदाहरण के लिए संस्कृत का एक छन्द :

यः पीयूषमयूखधामनि सुधा साराच्छकेछेपि यः
क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रलहरी लावण्यपूरेपि यः।
यः कान्ताधरपल्लवे मधुरिमा नासौ समुद्गाहते
श्रीविद्वत्कविकृष्णपंडितवचोवीचिसमीचीनताम्।।

यह कवि की गर्वोक्ति मालूम पड़ती है : छन्द में निबद्ध भावों का तात्पर्य यह है कि विद्वान् और कवि कृष्ण पंडित की वाणी रूपी लहरियों के बीच अवगाहन कर उसके याथार्थ्य को यदि समझ सके तो एकीकृत पीयूष किरणजाल का आनन्द अथवा सुधासार का पान कर सन्तुष्ट होना, क्षीरसागर में उफनती लहरों से उत्पन्न लावण्य-युक्त मधुरिमा और उससे प्राप्त होने वाला आनन्द अथवा युवती के अधर रूपी पल्लव-पान से जनित आनन्द सर्वथा व्यर्थ है।

इससे पहले उद्धृत हिन्दी के दो छन्दों तथा इस संस्कृत छन्द को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि दोनों ही भाषाओं में काव्य प्रतिभा का निखार चरमोत्कर्ष पर है। **शंभुराजचरित :** सर्ग १२, छन्द १७२ में कृष्ण नामक पंडित को संभाजी का गुरु कहा गया है और वही कृष्ण पंडित इतने सरस भावयुक्त छन्दों की रचना करता है। कवि कलश संभाजी का राजनीतिक गुरु रहा यह इतिहास सम्मत तथ्य है। हरिकवि ने अपने **'शंभुराजचरित'** महाकाव्य में **कृष्णाख्य** व्यक्ति को शंभुमहीपति का गुरु लिखा है और उस की के आदेश पर काव्य रचना की गयी। ऐसी स्थिति में कवि **कृष्ण पंडित** तथा **कवि कलश** एक ही व्यक्ति था, कहना तर्कसंगत प्रतीत होता है। इतना ही नहीं बाद में कवि कलश को **'कवि कलुष'** कहा जाने लगा था। कलुष के शाब्दिक अर्थ से दूर हटकर यदि भाव मात्र को ग्रहण कर लिया जाय तो कृष्ण नाम से साम्य बैठ जाता है।

कवि कलश ब्राह्मण कुलोत्पन्न था, यह कृष्ण पंडित अथवा कवि कृष्ण (हरिकवि संकलित सुभाषित हारावली के अनुसार) नाम से स्पष्ट है। वह किस स्थान, जनपद अथवा प्रदेश की विभूति

था विचारणीय प्रश्न है। इतिहास इस सम्बन्ध में भी मौन है। इस प्रश्न का समाधान मात्र शिवाजी द्वारा आगरा जेल से पलायन करने के बाद अपनाये मार्ग तथा पड़ावों के आधार पर किया जाना सम्भव हो सकता है। इससे अधिक सबल अन्य आधार नहीं मिल सकता। खफीखां ने अपनी तवारीख के दूसरे भाग में जो विवरण प्रस्तुत किया है उसके अनुसार शिवाजी आगरा की कैद से भागकर मथुरा पहुंचे। मथुरा में दाढ़ी-मूंछ मुड़ाकर साधु का वेश बनाया। अपने साथियों को भी उसी वेश में रखा। साथियों सहित इलाहाबाद होते हुए बनारस गये। दुर्भाग्य से साथियों-समेत इलाहाबाद में किले के पास एक फौजदार मोहम्मद कुली ने उस साधुओं की जमात को कैद कर लिया। पूरी रात शिवाजी, उनके साथी तथा कुछ अन्य यात्री भी कैद में रहे। दूसरे दिन शिवाजी ने युक्ति निकाली और आधी रात को वे अकेले थानेदार के पास पहुंचे और उसको अपनी बातों में फंसा लिया। बस, मोहम्मद कुली ने दो हीरे तथा एक लाल लेकर उनकी जमात को मुक्त कर दिया। आगे खफी खां ने लिखा है : 'शिवा फौजदार के जाल से छूटकर बनारस को चला और तेजी से चलने लगा। पैदल चलने में वह जल्दी चलने वालों से आगे निकलता था परंतु संभा के पांव में छाले पड़ जाने से उसके पांव में बेड़ी पड़ गयी, इसलिए उसने कवि कलश को जो पीढ़ियों से उसके बाप-दादाओं का जो कभी बनारस में आये थे पुरोहित कहलाता था और जिसके पास उनकी मुहर और दस्तखत का लिखत था, ढूंढकर अपने बेटे को कुछ जवाहरात और अशर्फियां-समेत सौंप दिया।'

इस विवरण से स्पष्ट है कि शिवाजी ने अपने पुत्र संभाजी को इलाहाबाद में छोड़ा था। उसकी सुरक्षा का गुरुतर भार स्वीकारने वाला ब्राह्मण भी इलाहाबाद का ही रहा होगा। कुछ विद्वानों के मत में शिवाजी ने संभाजी को मथुरा में छोड़ा। यह कथन मात्र कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। कारण १- मथुरा, आगरा और दिल्ली से बहुत निकट है। वहां होने वाली कारगुजारी का पता बादशाह औरंगजेब को चलना बहुत ही सरल था। शिवाजी एक राजनीतिक ही नहीं बड़ा ही दूरदर्शी व्यक्ति था वह ऐसी असावधानी नहीं कर सकता। दूसरी ओर इलाहाबाद आगरा और दिल्ली दोनों से बहुत दूर है। २- मथुरा में महाराष्ट्र समाज नहीं के समान रहा है दूसरी ओर इलाहाबाद में आज भी महाराष्ट्र जन का बहुतायत से निवास रहा है। उनका अपना एक सुदृढ़ संगठन है। यहां अपने पुत्र के संरक्षण का भार किसी विद्वान् ब्राह्मण को सौंपना शिवाजी की दृष्टि में निश्चित ही उचित लगा होगा। महाराष्ट्र समाज के कारण उसकी सुरक्षा की अधिक चौकसी भी संभव रही।

इस विवरण से स्पष्ट है कि शिवाजी ने संभा को इलाहाबाद में कवि कलश के पास छोड़ा। यह कवि कलश इलाहाबाद के किस कुल का गौरव था? नगर के किस भाग अथवा समीपस्थ किस गांव में जन्मा था? आदि प्रश्न विचारणीय अवश्य हैं किन्तु कवि कलश प्रयाग भूमि में तब था जिस समय शिवाजी बनारस के मार्ग पर बढ़ रहे थे। शिवाजी मोहम्मद कुली की कैद से छूटकर बहुत दूर न गये रहे होंगे, जब सम्भा जी की परेशानी का ज्ञान हुआ। किले से कुछ दूर पहले ही वह अपने साथियों के साथ कैद हो गये थे। वहाँ से आगे बढ़ने पर हो सकता है किले के पास तक आये रहे हों। इलाहाबाद के दारागंज मोहल्ले में रेलवे लाइन के समीप संकट मोचन हनुमान जी का मन्दिर

है। इस मन्दिर के प्रति जन सामान्य की बहुत आस्था है। जन समाज में विश्वास है कि इसमें हनुमान मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा समर्थ गुरु रामदास ने की थी। मन्दिर के कुलागत पुजारी के अनुसार उनके पास गुरु रामदास द्वारा हस्ताक्षरित लेख भी रहा है किन्तु वह भीषण बाढ़ में नष्ट हो चुका है। इलाहाबाद में सबसे अधिक महाराष्ट्र समाज भी इसी मोहल्ले में हैं। भोंसले बाड़ा और होल्कर बाड़ा जैसे विशाल भवन साक्षी हैं। सम्भवत: शिवाजी की भेंट कवि कलश से इसी भाग में हुई होगी। नगर का यह भाग बनारस जाने के मार्ग पर स्थित है। महाराष्ट्र समाज का सशक्त संगठन उस समय आज की अपेक्षा और अधिक रहा होगा। महाराष्ट्र समाज के कारण पुत्र संभा की रक्षा का विश्वास हुआ होगा। इसलिए शिवाजी ने पुत्र को यहाँ सुरक्षित किया। कवि कलश उस समय सम्भवतः इलाहाबाद नगर के इसी भाग में रहता रहा होगा।

कवि कलश प्रतिभा का धनी कवि था। वह संभा के साथ सदा रहा। कलश से ही प्रभावित हो स्वयं संभा हिन्दी में कविता लिखने लगा था। संभा के साथ कलश भी कैद किया गया और कुछ अन्य भी। औरंगजेब ने दोनों को सार्वजनिक रूप से अपमानित किया था। औरंगजेबनामा (भाग ३, पृष्ठ ६३) के अनुसार बादशाह ने बड़े गुस्से और मुसलमानी मत के ताअस्सुब (धर्मांध होकर) ने हुक्म दिया कि उस गुमराह को दो कोस से तखतेकुलाह (जकड़बन्द) करके और उसके साथियों को मजहके (उपहास) के कपड़े पहनाकर तरह-तरह से तकलीफ देते ऊँट पर सवार करके ढोल बजाते और बुरा कहते हुए उर्दू में लावें। संभा को तमाम उर्दू में घुमाते हुए दीवान आम में बादशाह के सामने लाया गया तो हुक्म हुजा कि कैदखाने में ले जायें।

फारसी लेखक खफी खाँ के अनुसार दूसरे मराठा छत्रपति सम्भा जी अपने शिक्षागुरु और मंत्री कवि कलश सहित दुर्भाग्य से गिरफ्तार होकर जब औरंगजेब के सामने लाये गये, बादशाह तख्त से उतरकर खुदा को धन्यवाद देने लगा। खफी खाँ लिखता है–'दोनों शिकंजे में जकड़े हुए थे। आँख और जुबान के सिवाय और किसी अंग का चलाना मुश्किल था। तो भी आंख और जुबान से सम्भा को सम्बोधन करके कवि कलश ने तुरत-फुरत ही एक हिन्दी शहर (दोहा) इस तरह कहा कि हे राजन् तुझे देखते ही आलमगीर बादशाह को, ऐसा तेज प्रताप वाला होकर भी, तख्त पर बैठे रहने की ताकत नहीं रही और विवश होकर तेरी ताजीम के वास्ते तख्त से उठकर नीचे उतर गया।'–

'तुब तप तेज निहार के
तखत तज्यो अवरंग।'

– **शिवशङ्कर त्रिपाठी**

संस्कृत दिवस, २०६५ वि०
दारागंज, इलाहाबाद-६,

मो. ०९३३६१६३९११

(इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कैटलागस्य पञ्चमभागतः (पृ.२७९) उद्धृतं विवरणम्)

About कलुष the enchanter, who exerted a wonderful influence upon सम्भा जी Prof. Velankar remarks.

Among the quatations we find one from the pen of famous कलुष . It is highly poetical and even though we unfortunately do not possess any literary remains of this great favourite of King सम्भा जी, we have grounds to believe that he was a literary man. In the old chronicles he is described as कवि कलश or the poet कलश . We will not be however far from truth in assuming that to a considerable extent. The literary gifts helped कलुष to maintain his influence with the prince. It is quite possible that this कवि कलुष may have composed several poems which are not preserved owing to the general dis-favour in which he was held, but stray copies of which may yet have existed and might oneday be discovered by us.'

These remarks of prof. Velankar tempt me to infer by way of pure hypothesis that कृष्ण पण्डित who is discribed in two verses as the गुरु of king शम्भु in the शम्भुराज चरित may be identical with कवि कलश, the kanuja Brahman who is popularly believed to have been purposely selected by the emperor.

Hari Kavi refers to some verses of this पण्डित and introduces them in his सुभाषितहारावली by the expression 'श्रीकृष्णपंडितानाम्' Then again in the शम्भुराज चरित **Hari Kavi** states that the wrote by order निदेशतः of one कृष्ण who was the गुरु of even King शम्भु (शम्भुमहीपतेरपि गुरोः) All these references show the great influence कृष्ण पंडित held over king सम्भा जी and it is possible that the may have been identical with the great enchanter of सम्भा जी popudarely known as कवि कलश The identification is however, suggested as a mere hypothesis as among other accomplishments of कृष्ण पंडित given in the five verses – we find he is called, सकल खलजनाखर्वगर्वप्रभेत्ता and दुर्नीतिः परिधिः खलादयुपविधिः प्रज्ञाप्रभाशेवधिः expressions which may hint at his cleverness in political chicanery, so characteristic of कवि कलश the great enchanter of king Sambhaji.

It may be considered in light of below quoted verses –

तस्मात्साधुपदाब्जसेवनपरः सोऽयं हरिश्चाभव-
छीनारायणपादपंकजसुधा-सेवाप्तवाग्वैभवः।

यः श्री शंभुमहीपतेरपि गुरोस्तस्यैव कृष्णाख्यया।
विख्यातस्य निदेशतो वरामिदंकाव्यं व्यधाद्द्भुतम्।।१७२

– शंभुराजचरित (सर्ग१२)

सुभाषित हारावली

वृंदारण्यमहीषु वंशनिनदामंदा मृतास्वादना–
निस्यंदानि दधुक्षयेव सुरभि वृंदानि संदानयन्।।
मंदारद्रुम वीथिकासुविहरन् वंदारुवृंदारक–
द्वंद्वस्तुत्यभिनंदितोस्तु जगदानंदाय नंदात्मजः।।

– कृष्णपंडितानाम्

* * *

शैवालश्रेणिशोभां दधति हरजटावल्लभोऽहं यस्या–
स्त सा सोल्लासवल्लाद्वरशफरतुलां यत्र धत्ते कलावान्।
उन्मीलद्भोगिभोगा बलिसुभगसितांभोजसंभाविताभा;
गंगानंगारिसंगा मम महति विधौ मंगलान्यातनोतु।।

– श्रीमत्कृष्णपंडितानाम्

यद्वाणी वाणीनीनां मधुरमधु रसद्रोहिणीं रौहिणेयः।
श्रुत्वा हालावहेलां रचयति सुचिरं सम्मदाकुंचिताक्षम्।
किंचिद्राक्षा सदृक्षाक्षररसनकर स्रस्तरुद्राक्षमालः,
सोत्कंठ नीलकंठोप्यनुपहति, शिरस्तांडवाडंबरेण।।

* * *

मौलमंदारदामभ्रदली पटलीकाकलीं श्रोणीबिम्बै,
चंचत्कांचीनिदानं चरणा कमलयोर्मंजुमंजीरसिंजाम्।
उत्संगे कीरगीतं स्तनभुवि, मसृणं कल्लकी पंचमं वा,
तत्काव्ये दत्तकर्णा शिव शिवमनुते भारतीभारमेव।।

य: पीयूषमयूखधामनि, सुधा साराछकंछेपि य:,
क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्र लहरी लावण्यपूरेपि य:।
य: कान्ताधरपल्लवे मधुरिमा, नासौ समुद्गाहते
श्रीविद्वत्कविकृष्ण पंडितवचो वीचिसमीचीनताम्।।१९८

– श्रीकृष्णापंडितानामेते

* * *

रसालंकार सारापि वाणी व्याकरणोज्झिता।
श्वित्रोपहतगात्रेव न रंजयति सज्जनान्।।

– कृष्णपंडितानाम्

– (सुभाषित हारावल्याम्)

We have seen above that in the old chronicles सम्भा जी adviser कलुष is described as कवि कलश In the above verses of कृष्ण पंडित he styles himself as कविकृष्णपंडित apparently emphasizing his poetical talents echoing the identity of his Sanskrit name कविकृष्ण with the popular name कविकलश.

अनुपलब्धग्रन्थ-प्रकाशनोपक्रमः

२

वेङ्कटेश्वरकविनाविरचितम्

उन्मत्तकविकलशप्रहसनम्

●

सम्पादनम्

शिवशङ्कर त्रिपाठी

श्री विद्यारामाय नमः।

कल्याणमाहतु ते गणनायकस्य
कामध्वजः प्रियतमां दधतोऽङ्क मध्ये ।
स्वस्याधिकार हरणादपराधिनोऽपि
सच्छात्रतां भवति (वहति) यः करपुष्करस्य ।।

अपि च—

कुन्दं गतो१ वसनमाहत्यमाप्तुमुच्चैः
आरोहिणीः तरुशिफ क्षुभितोरुमूलाः ।
पुष्पिण्य इत्यपहसन् धुरि गोपकन्याः
पुष्णातु मङ्गलमसौ पुरुषः पुराणः ।।

किञ्च—

यज्जानक्या हरणसमये रूपमासीदमुष्य
प्रत्यापत्तिस्समजनि तवेत्यादिमे साम्पराये ।
बाणैस्त्रुय्य(बाणैस्त्रुट्यन्)नमुकुटपटलं राक्षसेन्द्रं हसद्भिः
कीशैराविष्कृत मुखरुचिः पातु यातु प्रमाथी ।। (पातु सः राक्षसघ्नः)

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः (सानन्दम्)

अहो बहोः कालादानुलोम्यमवलम्ब्यते। शैलूष परिषदभिलि(ल)षितेषु देवेन।

विषमविशिख विद्याद्वैत सिद्धान्तसीम्नां
विटसदसि विचित्रैर्विश्रुतानां चरित्रैः ।

अहि धुरि मृगाक्षी योग वैज्ञानिकाना-
महह धुरि जनानामद्भुतोऽयं समाजः ।।

तदेतेषां पुरः किमपि रूपकमभिनेतव्यस्माभिः। (परिक्रम्यावलोक्य) अये, परिषदस्सकाशाद्रङ्गावतंस इव एवाभिवर्तते।

(प्रविश्य)

नटः

भावमन्मुखेन भवन्तमादिशन्ति सामाजिकाः। हास्यरसप्रायेण दृश्य सादृश्येन केनापि दृश्येन वयं विनोदनीया इति। किं पुनः तादृशं दृश्यम्।

सूत्रधारः (विचिन्त्य सहर्षम्)

हस्तगत माणिक्यमापणे मृग्यते। ननु निर्दिष्ट[५] गुणविशिष्टमस्मदवशमेव कवेर कुमारिका तरलतरङ्गताण्डवित शीकरासारशीतलोपशल्यमणलूरग्रहारहारनायकमणेः षड्दर्शनीसागरनिशाकरस्य षड्भाषासार्वभौमस्य प्रतिदिनं प्रबन्धनिर्माणपरमेश्वरस्य धर्मराजमनीषिणो भागधेयपरिणामेन बेङ्कटेश्वर कविना गृहीतवस्तुविरचितं उन्मत्त कविकलशं नाम कृतं सकलहृदयानन्दविकसनं प्रहसनम्।

नटः (सविस्मयम्)

भावविदितवेदितव्येनतेन महाकविना कुतस्तरामारब्धमसच्चरितानुबन्धिरूपकभिदम्।

सूत्रधारः

मरिष! सत्यमिदम् । सकल विद्वत्कविकुल प्रतारणैकतानस्यतस्यैवायं दोषः। तादृशानपि अपथि प्रवर्तयति। उक्तं च तेन कवितुरासाहा (कवीन्द्रेण) - अनृतानिसत्यलेशैः शबलानि पदे-पदे सन्ति। यदि शुद्धमनृतमिष्टं कविकलशस्यान्तिकं व्रजत। कलशं कविमाश्रित्य यत्किञ्चिल्लब्धुमिच्छति। शशशृङ्गं सङ् गृह्यकरण्डं कर्तुंभीहते। इति।

नटः

यद्येवमस्माभिरपि तेषु तेषु देशेषु प्रख्यापनीयमेतस्य दौर्जन्यम्। ततो जीवन्मृत .... एव कलशः।

सूत्रधारः

किमुच्यते - जीवन्मृत इति, चिरादयंलुप्त एव। पश्य-कविरिति कलशोयस्तस्यलोपोऽ खिलानामकलुषहृदयानां संमतस्सज्जनानाम्। इह हि यवनलोकस्तद्धिस्तं विहाय क्व नु न कलशलोपश्शाब्दिकाश्चेत्प्रमाणम्।

कविः प्रौढोदक्षः वयमभिनये सारविदसौ

सभा सर्वानन्दं प्रकटन निदानं प्रहसनम् ।

इदं सर्वन्तिष्ठत्वजनि समयो मन्मथ सखो
न यस्मिन् पुंभावो (पुंभाषो) विरमति दिवाप्यम्बुजदृशाम् ।

अद्य खलु,

आलिङ्ग्याध्वनि वल्लरीं मधुमयं माराम्बु (धाराम्बु) विस्रावयन्
उन्मत्तेषु पिकेषु पल्लवशिखा पञ्चाङ्गुलं पातयन् ।
उत्कूजत् (द्रणितं) यथालि विरुतैरुद्यान सीमास्व-
सावुन्मत्त प्रतिमो वसन्तपवनो मन्दं परिस्पन्दते ।।

नटः

आस्वाद्य प्रियसुहृदर्पितानि, शीधून्या -
ध्मातोदर समायुधेनमुक्तान् ।
आरामेष्वसकृदधस्समीर पूरान्
आहुः केऽप्यहह वसन्त मन्दवातान् ।।

(नेपथ्ये महान् कलकलः)

सूत्रधारः (कर्णं दत्वा)

कोऽयमधुना मन्दरमन्थानमथित कलशजलनिधियुगपदुदित कल्लोल कोलाहल प्रतिमल्लः कलकलः। (विभाव्य) साशङ्कं,

उत्ताल प्रसृमर हस्ततालमुच्चै
र्हासेन प्रकटित दन्तपङ्क्त्योऽमी ।
आधावन्त्यविरल भस्मपूर्ण-मुष्टि
प्रभ्रश्यद्वसनमहो रयेण सभ्याः ।।

न जाने किं निमित्तोऽयमावेगः सामाजिकानाम्।

नटः (विलोक्य, सहासम्)

रति विरतौ दृढघटितं शेफोयोनिञ्च कर्षतो युगपत् ।
क्षेप्तुं भस्मानि शुनोर्मध्ये सभ्याः प्रधावन्ति ।।

पश्य, क्षिप्तान्येव भस्मानि दुर्मोचोऽयं योनिबन्धः।

सूत्रधारः

प्रस्तुतस्यान्तरायस्संवृत्तः। (विचिन्त्य) मारिष! प्रवेश्यतां नियतमेतैस्तदभिमुखैरेव भाविष्यते।

नटः

नन्वयं प्रविष्ट एव, पश्य,

दौर्जन्यस्य तपः फलं सुचरितस्योत्पात केतुः
कलेरावृत्तिर्दुरितस्यगर्भसदनं मोहस्य काष्ठापरा ।
तृष्णायाः परदेवताऽनृतगिरां सीमा खलशोयसा (श्रेयसा)-
मास्थानी कलशस्स एष कविरित्यायाति मायानिधिः ।।

सूत्रधारः (सहासम्)

कटिघटित कठारिः कञ्चुकोष्णीष कक्ष्यो
यवन इव दधानः श्मश्रुजालं च भीमम् ।
असित कृशशरीरो ताल दीर्घोऽधुनोल्का-
मुख इव कलशोऽसौ दृश्यते क्रूरकर्मा ।।

एनमवलोक्य भीता इव कौलेयकाः अन्तिकं (श्ववृकं) यथा प्रदेशं विशन्ति सामाजिकाः-आवामपि अनन्तरकरणीयाय सज्जीभवाव (इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)।

प्रस्तावना

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टरूपः कवि कलशः शिष्यश्च)

कविकलशः

(कौलेयकौ विलोक्य सक्रोधम्) कटिनिहित कौक्षेयमौक्षिप्य (कौक्षेयकमुत्क्षिप्य धावन्) कथमेतौ मद्दर्शन भीतौ विघटितयो निबन्धौ धारालरक्तसिक्तमार्गौ पलायेते। (स्खलितचरणो निश्वस्य) दुश्शकुनमिदं-नूनमद्यतन व्ययाय ऋणं न लभ्येत। (शिष्यं प्रति) बालक, दैवज्ञोऽसि—किं फलमस्य शकुनस्य ?

शिष्यः (ध्यानमभिनीय)

आइरि अतु मं वुच्छि आरासिं ठि ओमं पुंच्छिसि-तंसि स णे स रो अंठ मंमि भाण दाद सं कि भोमो अवट्टइ।

(संस्कृतच्छाया)

आचार्य! त्वं वृश्चिकराशि स्थितो मां पृच्छसि—तस्मिन् शनैश्चरौऽष्टये भानुः द्वादशे च भौमो वर्तते-(संस्कृतमाश्रित्य) —

द्वादशाष्टम जन्मस्थाश्शन्यर्काङ्गारकस्तथा,
कुर्वन्ति प्राणसन्देहं स्थाननाशं धनक्षयम् ।

इति दैवज्ञाः कथयन्ति।

कविकलशः (सावज्ञम्)

किमेते कविकलशस्य करिष्यन्ति। कथ्यतामुपायः कस्यहस्तादद्यतन व्ययाय ऋणरूपेण किञ्चिद् भाष्यम् (द्ग्राह्यम्)।

शिष्यः

पुंवं-सौदं उत्तमण्णा गहि अकविर पंता कि दोपवासामग्गं निरोहयन्ति (ण्ति) तं भ अेण संतिहणिं गमी अदि। पुणो कहिं अण्णदोरिणादाणम्।

(संस्कृतच्छाया)

पूर्वं शतमुत्तमर्णा गृहीतकरवीरपत्राः (करवीरपट्टाः) कृतोपवासाः मार्गनिरोधं ्ुर्वन्ति। तद्भयेन रात्रौ निर्गम्यते। पुनः कथं अन्यतो ऋणादानम्।

कविकलशः

ऋणं गृह्णाति निश्शङ्कं न भूयस्तत्प्रयच्छति,
कलशस्य कवेरेतत् व्रतमारभ्य जन्ममः ।

शिष्यः

हो दु एषभिर्मो सअलोविणो। अंथि कि चिन्तउंतं सभीदि।

(संस्कृतच्छाया)

भवत्वत्र भीतस्सकलोऽपि जनः—अस्ति किं चित्रपुत्रस्स (गुप्तस्य) भीतिः।

कविकलशः

सम्भाव्येत कदाचिद्स्यापि मद्विषये विस्मरणम्। बहुत्वाल्लेखना शक्तिर्वा।

शिष्यः

एवं अंतणोपलब्धि (जि) दिणं जन्दं तेण, आइरिएण जं स कं सवि अमुणि अणा मह् अं सकं तोजि किं वि दिं जयि।

(संस्कृतच्छाया)

एवमात्मना प्रतिदिनं यतमानेनाचार्येण यस्य-

कस्याप्यज्ञात नामधेयस्य कुतो यत्किमपि दीयते ।।

कविकलशः

यत्किञ्चिद्यदि फल्गुभ्यो दीयते, पण्डिता अपि आश्रयेयुः स्वप्रतिष्ठानुगुणं दास्यति मां (दास्यतीति माम्)। ततः पण्डिता, आश्रयन्तीति प्रतिष्ठा लाभः।

शिष्यः

कालेण ताणिं किं विखु दा दं वं।

(संस्कृतच्छाया)

कालेन तेषामपि किमपि खलु दातव्यम्।

कविकलशः (सहासम्)

किं न श्रुतं त्वदाचार्यचरितं—नीतिर्वा-

अदातव्यं न दातव्यमाशामेव प्रदापयेत्।

आशां कालवतीं कुर्यात् कालं विघ्नेन योजेयेत् ।।

इति।

शिष्यः (स्वगतम्)

(हंयिचिला ओ ए सो) (प्रकाशम्) आ अरि अ दुरं आ अ दा अम्मे- को वि उंत मंणो एं थणा अं, च्छइ ग द अ स्वंबरी।

(संस्कृतच्छाया)

हन्त, किरात एषः–आचार्य दूरमागता वा (आगतौ आवाम्) कोऽप्युत्तमर्णोऽत्र नागच्छति शता (गता) च शर्वरी।

कविकलशः

हन्त, प्रभात प्राया शर्वरी।

गगन तनु गतानां ध्वान्तरोम्णां वितन्वन्
वपनमिह दधानः कर्तरीं रश्मिदम्भात् ।
चरमगिरि निकुञ्जं शर्वरी चक्रवर्ती,
वपनविधिमधः किं कर्तुकामः किमेति ।।

(प्राचीमवलोक्य)

उपरि सुरतलीला व्योमलक्ष्म्या पयोधौ,
नियतमिह विभाते मन्दमन्दं व्यरंसीत् ।
उदयगिरिमिषैतत्काम–दण्डो यदावि–
र्भवति सिति मनामा मेहनाम्बु–प्रवाहः ।।

शिष्यः

माणेणं व परिं मुखी पियदमा जं संवहा दंठि आ सीदेहिं चरणं पणाम विहिहं भूसादि दाणेण अ। सो एं ण्हिं कुवि दोपरं स तरुणी रूपाहि अं माणसे झायंतो सुरदं करेण **कुण एठा ऊणगेहं तरे, अवि अ–औव ग्गितं तोज लहिं ति संके जं तं सजादो म अ णं य अंम्मि। पुं वं दि सिं गे सिं गे सिदि मापदेशा पं जू सकालं मिपमेह, पूरो।**

(संस्कृतच्छाया)

मानेनैव पराङ्मुखी प्रियतमा यस्य प्रभातस्थिता सान्त्वैश्चरणे प्रणामविधिभिर्भूषादि दानेन च। स इदानीं कुपितः परस्य तरुणीं रूपाधिकां मानसे ध्यायन् सुरतं करेण कुरुते (करोति) स्थित्वागेहान्तरे। अपि च–

और्वाग्नितप्तो जलधिरिति शङ्के यत्तस्य जातोक्षि मदनध्वजे।
पूर्वादि श्रृङ्गे सितिमापदेशात् प्रत्यूषकाले प्रमेहपूरः।।

कविकलशः

यदुक्तं करेण सुरतं कुरुत इति लब्धमनेन सङ्कल्पितम्। सैव वञ्चिता।

शिष्यः

किं ता एण सुलहं एंकीक अदली फलं।

(संस्कृतच्छाया)

किं तस्या ना सुलभं एकं कदली फलम्।

कविकलशः (सहस्ततालं उच्चैर्विहस्य)

साधु यदुक्तं बालकेन पश्यात्रापि।

लगुडकुटिलकामदण्डा चण्डाहति विदलद्धगरक्तसिक्तवक्त्रः ।
विचलति विधवागृहाद्विटौघो दरदशनक्षतिरिक्तवीर्य शेफाः ।।

इतश्च,

स्वप्नोप्र(स्वप्नात)मत्ततरुणोद्धतमारयुद्ध
निध्यानमीलितदृशस्स्खलिताग्रपादाः ।
निस्सीम कामजल पिंछिल योनिरन्ध्राः
निर्यान्ति हन्त विधवा घुरि मूत्रणाय ।।

शिष्यः

एदाणं मुंतणेण जाणो अदि सण्णि हि दोत ठाओं।

(संस्कृतच्छाया)

एतासां मूत्रणैर्ज्ञायते सन्निहितस्तटाकः—इति।

(उभौ परिक्रामतः)

कविकलशः

अयमग्रे नारन्ध्र कुसुमित तडागस्तटाकः। इह खलु—

कमला करोति तर्षादलिगणरोगमपाचिकीर्षु रुच्चैः ।
धयति सरसिजाननेन गाढं तरुणदिवाकररश्मिमेद्रदण्डम् ।।

अयमिदानीम्—

दरकुञ्चित जानुतिरन्देशे (जानुतीरदेशे) कटिविन्यस्त पटं निषेदुषीणाम् ।
कुरुते मरुदाकुलैस्तरङ्गैर्गुदसंक्षालन पुण्यमङ्गनानाम् ।।

इह केऽपि भगवन्तं भास्वन्तमुपतिष्ठन्ते—

देहो व्याघ्रियते सूर्यनमस्कारे पुनः पुनः ।
दृष्टिस्स्नातोत्थितवधू तुङ्गवक्षोरुहान्तरे ।।

शिष्यः

के उण एदे पहाद मंजण निंमला जलं मिणि वसंति।

(संस्कृतच्छाया)

के पुनरेते प्रभातमज्जन निर्मला जले निवसन्ति।

कविकलशः

मसृणं रसभस्म भक्षयित्वा,
मदनग्रन्थि निवारणैकतानाः ।
जलमध्यगता नयन्ति कालं
जपशीलैव केपि साधुमध्ये ।।

शिष्यः

एं थ ख रंडा वधू मड्डि ओ वकंठो वो राणिओं वाचे इकिं विमोंकूण तमं थावे इ किं विअ। एसो रण्डा अण मणो र (रं) जणं क परायणो।

(संस्कृतच्छाया)

(अत्रखलु) रण्डाजन मण्डितोपकंठः पौराणिकः वाचयति किमपि मुक्त्वा तमर्थापयति किमपि च – एष रण्डाजन मनोरञ्जनैकपरायणः।

कविकलशः

पौराणिकोक्तान्यथा तथानि पश्याधुना श्लाघत एष भिक्षुः। रण्डाभिरगोनिहित नान्यमुष्य रंभाफलादीनि तृषैव पश्यन्। अत्राप्येते —

धवलित निजदेहा श्वेतमृत्स्नोर्घपुण्ड्रै,
र्बकशकृदनुलिप्त स्थाणु लीलां वहन्तः।
पिहितमपि निजास्यश्मश्रुभिस्सूचयन्तो
भृतगरिमरङ्गै र्वैष्णवाः केचनेतैः ।।

(पुरोऽवलोक्यन्तामेते)

सृक्वान्तर्विगलितवीटिका रसाक्ताः कक्षाम्भः कणमलिनोरुपूगभस्त्राः— स्वेदाम्बुद्रव पिहितातिपानतुङ्गाः केऽप्येते धुरि विवलन्ति लम्बकर्णाः। अद्य खलु—

तीरगता एते जलैस्संक्षाल्य मुखं जानुनी वक्षः ।
कक्षधृतपूगभस्त्राः कलयन्ति कर्म सान्ध्यममी ।।

इतश्च—

कक्षनखक्षत मसृणिमा विवृण्वता कञ्चुकेन वीताभ्याम्। बाहुभ्यां रक्षन्ती जलकुम्भं--सीकुजंजरवधूटी (ससीत्कृतंजारवधूटी)। इयं हि-पदकञ्चुककूर्पासकवेष्टनवस्त्रादि मोचनविलम्बात्। विगलित वीर्येण ईषद्भुक्ता पत्यां प्रयाति निर्विण्णा। इतश्चैते पौराणिकानुत्तरेणाध्यात्मकीर्तनपरा श्रूयन्ते। अमीषां किल न शक्यते सूत्रयितुं पाणिनिप्रमुखैरपि। पृथक् पृथक् नैकविधं परुष स्वर लक्षणम्। किं ब्रूथ--न गणयति कोऽपि पौराणिकानध्यात्म कीर्तनपरांश्चेति।

अयि पुराणपरा अपि गायका
बहुमतिर्न किलेति न शोचत ।

कुचनतं धुरि गान पुराणयोः
कुलधनं विधवा कुलमस्ति वः ।

शिष्यः

इदो को वि देसा हि आरी साडोपमा अच्छइ।

(संस्कृतच्छाया)

इतः कोऽपि देशाधिकारी साटोपमा गच्छति।

कविकलशः

नासावधिकारी—माध्व संन्यासी।

शिष्यः (सविस्मयम्)

किमणेण परिचंतं।

(संस्कृतच्छाया)

किमनेन परित्यक्तम्।

कविकलशः

नाममात्रेण संन्यासी। पश्य, अग्रे वाद्यकुलानि हेमशिबिका पार्श्वद्वये चामरे कर्पूरस्य हि चर्वणं चरणयोशिशष्यैस्समामर्दनम्। अन्नं भूपतियोग्यमच्छमृदुला शय्यापि गीतिः श्रुतिः, संन्यासो मठवासिनां विजयते विन्यास एव श्रियः। एते चास्य शिष्याः। भुजमूल भुजान्तराल फाल स्फुरितैर्लाञ्छन चन्द्रकप्रभेदैः। धृतसर्षपसार कारवल्लीफलखण्डैरिव मण्डितास्समन्तात्। अपि च,

कुल्यायितोष्णीषधरा वहन्तस्स्कन्धेषुभारं खरगोणिकाभं
सधूमपत्रं सहदेवपात्रैर्विलोलश्मश्रु (विडालश्मश्रु) लता सनाथाः ।।

(नेपथ्ये महान् कलकलः)

शिष्यः

को इमो इमं स अहि मुखाज्ञज्ञ हो।

कविकलशः

करविधृतारकूटमधुपानमुखैस्सतत भ्रमणकृशोदरैः श्रमजलाविलपुण्ड्र भरैर्मणिशिबिकारोह मुदितः सह शिष्य शतैः मठपतिरभ्येति यतिरस्य निसर्गरिपुः। पश्य-अहिनकुलं तथानन, तथा श्वलुलाय मितः शिव शिवकाकपेचकमहो न तथा कुरुते--अयमपि मस्करी पुनरयं च यथा कुरुतो जगदपहासकारि धुरि अवन्ध्यमदौ—अत्रहि--प्रत्येकरुद्ध तच्छिष्य सहस्रं यतिनोर्द्वयोः। लाघीयस्यत्र पद्यापि न वि अः किं भविष्यति। हन्त हन्त,

भग्नेषु गद्येष्वपि पादघातान्
प्रवर्तितस्तज्जनताडनाभ्याम् ।
अहो अमीषामविवेक भाजां
अभ्रङ्कषो वर्धत एष घोषः ।।

पश्य, यूथ द्वयात् प्रत्येकं निर्गत्य-
कर्णे गृहीत्वापतितौ कृतदन्त नखक्षतौ,
स्रस्तवस्त्रौ दम्पतीव दृश्येते रतिलोलुपौ ।।

अलमेषामविवेकिनामवलोकनपातकेन। (परिक्रामतः)

(नेपथ्ये)

अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम्।

कविकलशः (कर्णं दत्वा-आ (आकाशे))

कथममी सरभः धावन् (सं)घट्टित परस्यरांध्रयः किमेतदित्यन्योन्यमनुयुञ्जाना निरवकाशतया मार्गस्य समुन्नतस्थानमारुह्य दूरमुद्ग्रीवमालोकमाना पुञ्जीभवन्त्याबालवृद्धं अग्रे जनाः। (निर्वर्ण्य सहासम्) पेटी बन्धनरज्जुभिर्भुजयुगे पाश्चात्य भागे दृढं बद्धौ

पत्तनपालकैरभिहतावाकृष्यमाणौ हठात्। वस्त्रेषु स्फुटमाहृतेषु परितो विस्पष्ट गुह्यस्थलौ कावेतौबलमल्लकं दिशत भोरित्यद्ब्रुवन्तौ पुरः। (सत्वरमुपसर्पति)

(ततः प्रविशतः त्रुटिततंत्र्या वीणया पालकैरभिहन्यमानो विधवा भागवतौ पालकाश्च)

प्रधानपालः

अरे! भागवतापशत (द) कथं देवालयार्धमण्डप एव श्वकृत्यं कृतवानसि।

भागवतः (विवृत दन्तपङ्क्तिः दर्शित दैन्यं) प्रसीदतु भवान् मयैवमाचरितम्।

पालकः

पित्रार्जितो वा स प्रदेशः यदनया कुलटया सह रात्रावुषितवानसि।

भागवतः

किञ्चित् शिथिलय बन्धनम्—वदामि।

पालकः (तथा कृत्वा)

कथय यथातत्वम्।

भागवतः

अस्याः मन्त्रोपदेशाय भगवतस्सन्निधाने कृतो वासः।

बालाः (पालकाः)

हुड धुंत जवा इ कणि आ ओ वि अक हंत भित्ति हिं बिं दुणो दिसंति।

भागवतः

मन्त्रोपदेश समये शङ्खचूर्ण मिश्रेण भगवत्पादकोदकेनस्थलशुद्धिः कृता।

प्रधान पालः

तस्य मशक मक्षिक कोलाहलः स्यात्। (इति पुनस्ताडयति)

भागवतः (उच्चैः क्रोशति)

प्रधान पालः

तिष्ठत्वयं वराकः—पातयत पुनरस्या रण्डायास्सुचिरलग्नानि। शेफांसि पश्चाद्भागे पादप्रहारेण।

रण्डा (साक्रन्दं)

मुंच ह जहं थ भणामि।

(संस्कृतच्छाया)

मुञ्चत यथार्थं भणामि।

पालाः

कहेहि—ज इ द यियं देजं वि अं।

(संस्कृतच्छाया)

कथय—यदि दयितं ते जीवितम्।

रण्डा

एसो भा अ व दो ण हिण हि दें सि ओं मंतोवदेसङ्करे मिंति गुरुणो देवं स अणंति भेदो ताण तस्सव अणी उफळं खणिं जति भणि अमोख्ख मग्गं दं से मीति णीवि मोख्खं करि अ।

(संस्कृतच्छाया)

एष भागवतो—नहि नहि देशिको मन्त्रोपदेशं करोमीति गुरोर्देवस्य च नास्ति भेदस्तस्मात् न तस्य वचनमुल्लंघनीयमिति भणित्वा मोक्षमार्गं दर्शयामीति नीवीमोक्षं कृत्वा (इत्यर्धोक्ते लज्जया) विरमति।

प्रधानः पालः

किंतव किमत्रोत्तरम्।

भागवतः

अङ्कनेन सह गृहीतस्य मुम्मिलकस्य (कुम्भीलकस्य) यदुत्तरम्।

प्रधान पालः

किं दीयते, मुञ्चामि।

भागवतः

किं दीयताम्,

अपहृतमिह सर्वं यच्चवस्त्रादि पालै-
र्जठर भरण हेतुर्वल्लकी सा विभग्ना ।
सह परिणत चूताकार बीजद्वयेन
प्रचुर भुज समानश्चर्मदण्डो ममास्ते ।।

पालः (विधवां प्रति)

तुमं कहेहि।

(संस्कृतच्छाया)

त्वं कथय।

विधवा

दे सि अ न इं वयिकरेण लुंछिय रोमजालं विणवर कुं कु डं डं वि अदी स इ तु म्हाणीं किं दिं ज इ।

(संस्कृतच्छाया)

देशिकरतिव्यतिकरेण लुंछित रोमजालमपिकेवलं कुक्कुटाण्डमिव दृश्यते। युष्मभ्यं किं दीयताम्।

शिष्यः

इरिसे सुविमहं तोम अ रं द अ विलासो।

(संस्कृतच्छाया)

ईदृशेष्वपि महान् मकरध्वज विलासः।

कविकलशः (विहस्य)

गोविन्देति शनैर्वचो न भणितं गण्डस्थली चुम्बनं नास्वादो रदनच्छदस्य सुदृढाश्लेषः क्वचिन्न क्षतम्। अस्त्येवं नु कथं दशार्धपतनं झळफळै ध्वनिर्नास्त्यहो रण्डा भागवतादृते निधुवने कामोऽपरश्श्रोत्रियः। वत्स तारतम्यज्ञ एव भगवाननङ्गः। पश्य–

कुरुते तु पलाश, दण्डचापे,
कुशमालामय सिञ्जिनीं विधाय ।
यदसौ तुलसीदलाख्यमस्त्रं,
यतिरण्डा सुरतोत्सवे प्रयुङ्क्ते ।।

प्रधानतः परमेवं त्वया विधेयम्।

भागवतः (निःश्वस्य)

वृत्तिच्छेद एव कृतो युष्माभिः। का पुनरपराविश्वसिति।

प्रधान पालः

धूर्त—अयं (धूर्तोऽयं) अधिकारिणे निवेद्यताम् ।

(पालाः सह विधवा भागवताभ्या सर्वे निष्क्रान्ताः)

कविकलशः (परिक्रम्यावलोक्य)

कावेतौ कवीन्द्राविव।

(ततः प्रविशतः कवीन्द्रौ)

उभौ

इतः कविकलशो दृश्यते।

कविकलशः

कथं प्रौढकविर्बालकविश्च।

प्रौढः

भवद्दर्शनायागतौ स्वः। मदीयमेकं पद्यं श्रूयताम्।

कविकलशः

प्र (अ) (आ) वहितोऽस्मि।

प्रौढ :

विद्युज्जिह्वं जयसि निजया मायया शम्बरञ्च,
त्वं मारीचं कविकलश हे! तं चं पौलस्त्य सूनुम् ।
कालस्य त्वं शिव शिव कलेर्जीवनाडी चतुर्थोऽ
प्यासील्लुप्तो मलिनमनसा येन धर्मस्य पादः ।।

कविकलशः (उच्चैर्विहस्य)

स्तुतिरियं समीचीना। श्लोकस्तु नाळिकेरपाकः। बालकवे! त्वया किञ्चित् पठ्यताम्।

बालकविः

मत्कुण वृश्चिक महिषप्लवङ्ग कौलेयकागोष्ठ श्वानः।

पृथक पृथगवलोक्याः कविकलशे दृष्टिगोचरे जाते ।।

कविकलशः (सानन्दम्)

अहो, सन्दर्भशुद्धिः। अहोद्राक्षापाकः। अहो, रसस्फूर्तिः। ईदृशमेव पद्यमनवद्यम्।

प्रौढः (स्वगतं, सामर्षम्)

मूर्खोऽयं भाषाकवित्वेन व्यामोहत्यनभिज्ञान्। (प्रकाशम्)

अवमत्य महाकवीश्वरं धुरि सम्भावयता खलञ्जनम् ।
भगलोमसु बद्ध्यते त्वया कुसुमस्त्रक्ककबरी भरोचिता ।।

खलानां यदि ताम्बूलं कवे कलश दीयते ।

भवते प्रथममं देयं पात्रे विन्यस्य राजते (रजतमये पात्रे)।।

कविकलशः

भवदृशामेवायमनुग्रहः। अद्य गम्यतां अङ्गारकवारे। पुनरयमञ्जनो द्रष्टव्यः किञ्चित्पारितोषिकं दीयते।

उभौ

तथा (इति निष्क्रान्तौ)।

शिष्यः

अङ्गार अवारं मि किं तु ह आ अ मिंस्सइ।

(संस्कृतच्छाया)

अङ्गारकवारे किं तवागमिष्यति ?

कविकलशः

बहवः खल्वङ्गारकवाराः अन्तिमे वारे दीयते।

शिष्यः

किं इमिणा अह्माणं (किमनेनास्माकम्)

कविकलशः

उक्तं खलु—आशामेव प्रदापयेदिति (पदान्तरं गत्वा) अग्रतो ग्रामवाटिकायां दम्पत्योरिव (ह) कलहः (नेपथ्ये) पूतिगन्धि वदनं तव जल्पं मा कुरुष्व यदि जल्पसि भूयः। दर्शयेयमधुना भुज मूलं नाथ येन न भवेदिह वासः।

शिष्यः

किं एदं (किमेतत्)

कविकलशः

नायकवदन दुर्गन्धोद्वेजितायास्स्वभुजमूलदुर्गन्धं दर्शयितुकामायाः कस्याश्चिददं वचनम्। किमनेनास्माकम्। (पदान्तरं गत्वा) गर्भिण्या सह पुत्र्यागळदश्रुभरं कचान् विलुञ्छन्ती। पथि पतति लुठति रोदिति पांसुभिरालिप्त विग्रहा जरती।

(ततः प्रविशति पुत्र्या सह जरती)

जरती (साक्रन्दं, पुत्र्याः केशपाशं वसनाञ्चलेन मार्जयन्ती, आघ्राय)

कडुं गं यो अज्जविणंणिं च इ—वं चा ए के सभरं वं च तु ह कं ता ए सो अचिंति ओ अणं थो (किं करोमि कहिं गच्छस्सं किं वा पुंहिंसं।)

(संस्कृतच्छाया)

कटु गन्धोऽद्यापि न मुञ्चति वत्सायाः केशभरम्। वत्से तव कुतोऽयमचिन्तितोऽनर्थः किं करोमि, कुत्र गच्छामि कं वा प्रक्ष्यामि।

पुत्री (रोदिति)

कविकलशः (उपसृत्य)

मा भैषीः—कुतो रुद्यते।

जरती (सगद्गदं, उदरं कराभ्यामाहत्य)

अं अहदं ह्मि।

(संस्कृतच्छाया)

आर्य हताऽस्मि।

कविकलशः

कथय किमेतत्।

जरती

एषाम ह एं का धू आ—चिरंसगंभरहि आ दें व जो एण गणिणी (गर्भिणी) सं वु ता—इमा एव सवकाळोंतिप इ घरादोम ए आणीदा ए मं गमं झ समविणोद अंथीरुंखमूळं मिठि आए, केसंमि, झंति कोविसुण ओ उत्थाय (स्वचरणमुन्नमय्य) एळं (व्वं) चरणं उंण मि अ मुंति दवंतो। इमिणा दुंणिमिं तेण मह एसो सन्तावो.......।

(संस्कृतच्छाया)

एषा मम एका दुहिता चिरस्य गर्भरहिता। देव! दैव (योगेन) गर्भिणी संवृत्ता। अस्याः प्रसवकाल इति पतिगृहान्मयानीताया मार्गमध्ये श्रमविनोदनार्थं वृक्षमूले स्थितायाः केशे झटित्युपसृत्य कोऽपि शुनकः एवं चरणमुन्नम्य मूत्रितवान्। अनेन दुर्निमित्तेन ममायं सन्तापः।

कविकलशः (सहासम्)

शुभोदर्कमिदं कुतस्ते सन्तापः सुखप्रसवेयं भविष्यति।

जरती

पुणो वि कहेहि जणिदं पसवेण मुहेण।

(संस्कृतच्छाया)

पुनरपि कथय जनित प्रसवेन मुखेन।

किं पुं तं जणे इ ए सा पुं ति अं वा। (किं पुत्रं जनयत्येषा पुत्रिकांवा)।

कविकलशः

स शुनकः शुनिर्वा (शुनीवा) अथवा कृतं (अलं) सन्देहेन। चरणोत्क्षेपात् शुनक इति निश्चीयते। नहि शुन्या मूत्रणावसरे चरणोत्क्षेपः- ततः पुं शुनक मूत्रसङ्गात् पुमपत्यमेव जनयेत्।

जरती (चरणयोः पतित्वा, पुत्रिका करङ्कगतं सर्वं ताम्बूलमादाय पुरो निक्षिपति)।

शिष्यः (गृहीत्वा)

एदाय एक्कं आहरणं ज इ दी अ इ पुं त ओ एव्व हों ज।

(संस्कृतच्छाया)

एतस्याः एकमाभरणं यदि दीयते, पुत्र एव भविष्यति।

पुत्री (जनान्तिकम्)

माए एदा कि द वा एव्व जं हो इ तं हों ज गच्छह्म।

(संस्कृतच्छाया)

मातरेतौ कितवावेव। यद्भवति तद्भविष्यति। गच्छावः।

(इतिनिष्क्रान्ते)

शिष्यः (अन्यतोऽवलोक्य)

को एसो वारविळासिणं हि परिवुदो विविह विडचाडुवादीकंपि असिरोधुंतो।

(संस्कृतच्छाया)

क एष (वारविलासिनी परिवृत्तः) विविध चाटुवादकम्पित शिरा, धूर्त्तः।

कविकलशः

एष खलु कृपणभक्तनाम्नो वणिजो विटचक्रवर्ती नाम तनयः। अतिलुब्धेन पित्रा कृच्छ्राद‍र्जितानि धनान्येव नाशयति। यस्य पितरमधिकृत्य इदं पद्यम्—

ईशो भिक्षाकवेरेषो वणिजमतिधनं देयभीत्या विविक्ते,
स्नान्तं याचन्निरस्तोऽप्यसकृदनुनयन्लब्धवाञ्चाभ्यनुज्ञः।
आयाहि श्वः परेद्युस्तमसि रहसि चेत्यालपन्तं मृषास्तं,
यान्तं न्यस्तं चितायां सकरुणमवलोक्यादितास्मायाऽभीष्टम्' इति।

किमनेन (अन्यतः परिक्रामन्)

भसित धवले गात्रे रुद्राक्षदाम, परम्पराम्,
स्फटिकघुटिकां पाणौ विभ्रत्कएष विलोक्यते ।
अयवमय पक्षोविष्टं भादयं समुदीक्षणात्,
अनृजु हृदयं कुर्वन् माहात्म्यमेव निजं परम्।।
अयवमयमहो पक्षोविष्टं भमस्मदुदीक्षणात्,
अनृजु हृदयं कुर्वन् माहात्म्यमेव निजं परम् ।।

(उपसृत्य) पश्य—

यथा यथा सविध, गता, वयम्
तथा तथा दृढंपिहितं विलोचनद्वयम् ।
विमोचयत्यविरळमश्रुं हर्षजं,
भवेदिदमरिचलवानुषङ्गतः ।।

शोधयामस्सम्यगिदमीयं चरितं (इल्युपसृत्य) आः केयमग्रे दुःश्रव दुर्भाषण सहस्रनट दधरपुटा–समुन्नत वामकराङ्गुलि सान्द्रित पञ्चाङ्गुलमुद्रा–सावेगचरणविन्यास विस्रंवरणतया प्रकाशित विविध विटकुट्टनस्थ पुटित दोरन्तराकाळीव काप्यापतति।

(प्रविश्य चेटी)

(ध्यानवरस्य शिरसिपञ्चाङ्गुलं पातयित्वा) किं चिंती अदि रंतीए जिडं चळेण लीढिं ऊरुमूळ आदु तद्ङ्कुरम्।

(संस्कृतच्छाया)

किं चिन्तयते रात्रौ जिह्वाञ्चलेन लीढमूरुमूलम् उत तदङ्कुरम्।

(इति मुखमारुतेनापूर्य करसम्पुटं पुनः शिरसि पातयति)

(प्रविश्य सक्रोधम्)

ब्राह्मणः (समीपगतं दर्भमुष्टि मण्डिताग्रदण्डमुद्यम्य)

दास्याः पुत्रि एष न भवसि।

चेटी

पहरेहि, पहरेहि (इति—अधोवसनमुन्नमय्यदर्शयति)

कविकलशः (उपसृत्य)

किमेतद्युवयोः।

चेटी

अं अ पेंख पेंख—एसो वेह वे ओ मह पुंतो भोदं इच्छइ।

(संस्कृतच्छाया)

एष वैधवेयो मम पुत्रो भवितुमिच्छति।

शिष्यः

आ आळ कहेहि (आमूलं कथय)।

चेटी

इमो बह्मबन्धू अदीद दिणं पदो से मए सह रतिं पंथि दवं तो। तदोमए अंणेहिंदिजंतं स बाह्मणों ति अं यं एं व गण्डी अ अंगीकिदो—पहादपेरंतंणंथि एदं सणिदंव भूयिट्ठं ळेहणे णं व रं तिंणी दवं तो—पं आ सें णिं दि अं मं वं चि अ पग्घं चळबन्धं अंपणा दिंणं ओ हरि अण बह्मणो वि अ झा अइ।

(संस्कृतच्छाया)

अयं ब्रह्मबन्धुरतीतदिन प्रदोषे मया सह रतिं प्रार्थितवान्। ततो मयाऽन्यैर्दीयमानस्य 'ब्राह्मण' इत्यर्धमेव गृहीत्वाऽङ्गीकृतः। प्रभातपर्यन्तं-नास्त्येतस्य निद्रैव भूयिष्ठं लेहनेनैव रात्रिं नीतवान्। प्रभाते निद्रितां मां वञ्चयित्वा पटाञ्चलबद्धं आत्मना दत्तमपहृत्यात्र ब्राह्मण इव ध्यायति।

शिष्यः

ही ही—किं सच्चमिदं। (हि हि हि वैदुषिके किं सत्यमेतत्।)

ब्राह्मणः

रण्डे यत्किञ्चितसंबद्धं प्रलपसि।

कविकलशः

ईदृशः किं चेटीरतिं करोति।

ब्राह्मणः

तथा शिक्षय दासीपुत्रीम्।

चेटी

णं रं ण लेहणं अ (न केवलं रतिं लेहनं च)

कविकलशः

अस्ति किमत्र साक्षी।

चेटी

अंथि।

ब्राह्मणः

अस्ति यदि साक्षी सत्यमिदम्।

चेटी

पुणो वि पातइ सं पं चं गुळं (पुनरपि पातयिष्यामि पञ्चाङ्गुलम्)।

कविकलशः

तिष्ठतु तद्दर्शय साक्षिणम्।

चेटी

ज इदं स णिं जं सुणाहि—एसो रण्डापुत्तो बह्मणो खु अ हि कहिं विणृत एण हं खदं का दव्वंति मं अंणुणीदवं तो—तदो मए उ अ मूळं मि अणामि आ मज्जं मंगुळहिं खदं कारि अं पेंख दु अं जो।

(संस्कृतच्छाया)

यदि दर्शनीयम्। श्रृणु एष रण्डा पुत्रो—ब्राह्मणः खल्वहं कुत्रापि न त्वया प्रकाशं नखक्षतं कर्तव्यं इति मामुननीतवान्— ततो मया भुजमूले अनामिकामध्यमाङ्गुलिभ्यां क्षतं कारितं दृश्यतां आर्यः (इति बलात्तद्भुजमुन्नमय्य क्षतं दर्शयित्वा स्वनखप्रमाणमिति नखे दर्शयति)।

कविकलशः (विहस्य)

आहतं झटिति देयं यावदन्यो न जानाति।

ब्राह्मणः (सभयलज्जम्)

(पेटिकायान्यस्तं गृहीतुमिच्छति)

चेटी

मा एं व आ आसि अ पुणा इ किं दिं जइ।

(संस्कृतच्छाया)

मामेवमायास्य पुनः किं दीयते। (पेटिकां गृहीत्वा धावति)।

ब्राह्मणः (अनुधावितुमिच्छति)

कविकलशः

तिष्ठ, तिष्ठ। नेयं पुनः प्रयच्छति।

ब्राह्मणः (अधोमुखस्तिष्ठति)

अरे साधो स्ववशे द्रविण व्ययासहे स्मृति लभ्ये सति मुष्टिमैथुने। जड संप्रति

शंफलीरते जनिता ते कथमीदृशी मतिः। यद्येतत् अन्यस्मै न प्रकाशनीयम्। तर्हि एताः रुद्राक्षमालिकाः प्रदीयन्ताम्।

ब्राह्मणः (क्षणं विचिन्त्य) रुद्राक्षमालिकाः कण्ठादवरोप्य दत्वा सत्वरं निष्क्रान्तः)

शिष्यः

सीव भंतो हसो पमादादोहदजादणजुंतरुद्दख्खमालि आहरणम्।

(संस्कृतच्छाया)

शिवभक्त एषः। प्रमादादेतज्जातं न युक्तं रुद्राक्षमालिकाऽहरणम्।

कविकलशः

अद्यतन व्ययस्य किञ्चिदपि लभ्यते। रुद्राक्षमालिकाविक्रयकालो नेतव्यः— मदधिकः को वा भक्तः। को वा जंजपूगोश्च।

जंजपूकः

को वा कविः, को वा साहसी च।

शिष्यः (स्वगतम्)

अतिदारुणोचिळा ओ एसो (अतिदारुणः किरात एषः।)

(परिक्रामतः)

कविकलशः (ऊर्ध्वमवलोक्य)

हन्त मध्याह्नः संवृत्तः। पश्य—

'रविकरनिकरेण सूर्यकान्तज्वलनभरेण च दह्यते प्रपञ्चः' इति।

नियतमयी क्षिपन्ति तोयं नभसि किलार्घ्यभिषेण भूसुरेन्द्राः। इयं च—

भूयसादर्शित पुळिमण्डलालग्नं
करणेन तरवियमाणोपकण्ठाः[१] ।
कामक्षुभ्यत्करभ विवशा क्रन्दितैरुद्गताभिः
'पाश्चात्याङ्घ्रि प्रहतिभिरमी'दुर्गमा रासभीनाम् ।

(परिक्रामन्)

एतस्यास्तटतरु नम्रशाखिकाग्र-
व्याघट्ट प्रशिथिल भङ्ग झाङ्क्रियाभिः।
तत्प्रौढस्त्री तरुण परस्पराभियोगा-
दुद्भूतं ध्वनिमुररी करोति पूरः ।।

(समन्तादवलोक्य)

अद्य हि—

मध्याह्नोद्यद्रविकर परिक्रीडमानातिकान्त,
ज्वालामाला समाक्रान्ति विद्रावितस्य ।
वायोराज्यं विदधति समाध्मातपीनोदराणां,
जग्ध्वा कण्ठं किमपि जरतां वायवः पायवीयाः ।।

(पुरोऽवलोक्य)

एते हि बुर्बुरच्छायामार्गेण—

कक्षान्तरालघनघर्म जलाप्लुतेन,
कन्थासमेन मलिनेन च कञ्चुकेन ।
आच्छादितास्त्वगणितातपतापवेगा,
विद्वद्ब्रुवाः कतिचिदत्र समापतन्ति ।।

---

१. पत्रमतीवनष्टं, कीट जग्घत्वात्।

(विहस्य)

मार्गे मार्गे निसर्गोद्भटभटगमनाक्षिप्त कौक्षेयकाग्रव्यास-
ङ्गादङ्कुरन्ति व्रणकिणकणिकाः कञ्चुकैश्छादयन्तः ।
ग्रथन्तो भानुतापं दहनमिव जरन्मेरु कुल्याधिकार्मिं,
क्षुत्क्षामा वाच्युदग्राः प्रतिविभुभवनं पण्डिताः पर्यटन्ति ।।

हन्त, हन्त—

न निज सदने वासः सदवान्नं कदापि भुज्यते,
न च परगुणे प्रीतिर्नाज्ञेषु वा विमनस्कता ।
गुणिनमगुणं सन्तं चासन्त प्रतिभा न तो
नरपति सङ्गे व्याचक्षाणा भ्रमन्ति धनाशया ।।

शिष्यः

पहुणो स विहंमो कुण कंतो एंथ आपठंति। (प्रभोस्सविधं मुक्त्वा कुतोऽत्र समापतन्ति)

कविकलशः

को नामेदानीमाश्रयणी यः प्रभुर्वर्तते। पश्य—

दुर्वारो द्वारिरोधः कथमपि च बहिर्दर्शनं लभ्यते चेत् सावज्ञं प्राभृतस्य ग्रहणमथवा दाक्षिणा मूर्तिमुद्रा तेजोभङ्गाय हीने बहुमतिरथवा केवलं वृत्तिभाजां कष्टं दुष्टप्रभूणां विदुषि निकटगे कापि शिक्षैव मिन्धे। प्रभुद्वार विक्रीता युषामेतेषामिदानीम्

प्राज्ञं मन्यः प्रभुश्चेत् सुकविभणितिषु क्षौद्रधारामयीषु,
ब्रूते दोषं तदज्ञोदितमिति मनसा ज्ञायमानेन सह्यम् ।
त्यक्त्वा धर्मं स्वकीयं खलकुलचरितैरेव कुक्षिम्भरीणा-
मग्रे विद्वद्ब्रुवाणामनुरसित सखस्सह्यतां किं प्रलापः ।।

(विमृश्य)

उत्तमर्णा इमे मामेवान्विष्यायान्ति, न कुत्र गन्तव्यं, आसन्ना एव।

अस्माकमिव दारिद्रयं अमीषां पृथक्स्थितिः। हा हन्त, हन्त दुर्मोचमब्धेरपि तनूजया।

श्लाघन्तेऽमीपुरः पश्चात् किं विनिन्दन्त्यसन्निधौ,
अहो अमीषां दौर्जन्यमसत्स्वपि न लक्ष्यते ।।

भवतु ज्ञास्यामः।

(ततः प्रविशन्ति विद्वान्सः)

एकः

भट्टाः स्त्रियाः पुंवद्भाव प्रयोजकं समानाधिकरण्यं खलु तच्चेदभ्युपगम्यते काममन्यत्र प्रियादेः दृढभक्तिरिति कश्चित्प्रियादिष्वत्यङ्गी करोति। तिष्ठतु तत्किमनया चिन्तया। कुत्र स बराको वर्तते इति विचारयामः। एते पुरः पथिकाः एतान् पृच्छामः। भोः पथिकाः (आकाशे) कविकलशः किं दृष्टः—किं ब्रूथ, रजकमध्ये वर्तत इति (सहासं परिक्रम्योपसृत्य) श्वश्रेयस्याधिगमोऽस्तु।

कविकलशः

कठोरातपे समये कथं भवतां बृथा परिभ्रमणम् ?

सर्वे

खट्वारूढता भवतेव नाद्रिताऽस्माभिः। किमस्मानाकुलयसि।

कविकलशः

किं मयापकृतम्।

एकः

पतिते कुचभस्त्रिके प्रियाया स्पृश्यमाने नवघर्मवारितप्ते।
प्रतिबिम्बितमङ्गुलीयकं यत् प्रतनोति स्म नखक्षतस्य लक्ष्मीम्।।

तादृशमप्यङ्गुलीयकं विक्रीय दत्तं न पुनर्दीयते।

अन्यः

यत्पुष्पं नयनयुगे मदीय पत्न्यास्तस्मादप्यति धवलं यदस्तिवस्त्रम्।

संस्पर्शादधिगतमार्दवं तया तत् विक्रीतं तदनु तव व्ययाय दत्तम्।।

अन्ये

मम क्षेत्रं, मम वसनं मम राजसन्निधौ कार्य निवेदनम्, किं बहुना न कस्य किं प्रतिज्ञातम् (इत्येकैकः समुस्तिष्ठन्ति)।

शिष्यः (जनान्तिकं)

बहुणो मिळिदा उ वा ए जेदं वा (बहवो मिलिताः उपायेन जेतव्याः।)

कविकलशः

अद्य राज्ञा बहुदीयत इत्युक्तम्। महानदी तीरे महान् ग्रामो दत्तः—सर्वेषां रुद्राक्षाणि दीयन्ते। तिष्ठतु तत्। शिवभक्ताः खलु यूयम्। धार्यन्तामिमाः। (इति शिष्यहस्तस्थितां रुद्राक्षमालिकां गृहीत्वा प्रत्येकं एकैकमालिकां प्रयच्छति।)

सर्वे (गृहीत्वा) अद्य गच्छामः। श्वो निरोधः क्रियताम्।

(इति निष्क्रान्ताः)

शिष्यः

हंथि अंणा अदो गहि आ ओ तं णा अदो गदा ओ रुन्दख्खमालि आ ए।

(संस्कृतच्छाया)

हन्त, अन्यायतो गृहीतास्ताः, अन्यायतो गता रुद्राक्षमालिकाः।

कविकलशः

मद्दळवादनलब्धं जग्घश्च तयान्यं धान्यम्। पथिलब्धं पथिलुप्तं............किमस्माकमेतेन[२]।

(नेपथ्ये)

भो भोः पथिकाः—अस्माकमेतेन किं वो नयनपदवीमवतीर्णा मदीया प्रेयसी। किं ब्रूथ—किं तस्यालक्षणमिति। श्रूयतां आनाभिमूलपतितस्तन एक एव वक्षस्समस्तदितरो जटिलाश्च केशाः। तस्यास्स्वरेतिगते करभो विनष्टो दृष्टोऽधुनेति धृतरज्जुरुपैतिकारुः। हन्त न कोऽप्युत्तरयति (हसित्वा) सर्वेऽपि गच्छन्ति। गच्छन्तु नाम। अहं पुनरिस्ततो गवेषयामि।

शिष्यः

हंथि धा आ ळणयण जलो को वि एं थ दी स इ उ व सु पा मो।

(संस्कृतच्छाया)

हन्त धारा नयन जलः कोप्यत्र दृश्यते—उभावुपसर्पाव (इत्युपसर्पति)।

(ततः प्रविशति पुरुषः)

पुरुषः (आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा)

नाघ्रातमाननमसंस्कृतमित्यदः किं ताम्बूलहीन इति किन्नवधरो न पीतः। त्यक्ता मया त्वमसि किं नु रजस्वलेति। किं मां परित्यजसि। खिन्नमकाण्ड एव।

कविकलशः

भोः किमर्थं रुद्यते ?

---

२. पत्रमतिभ्रष्टं कीटजग्धत्वात्।

पुरुषः

किं ब्रवीमि—वैदेशिकेन केनचित् कतिपयदिनमात्रमस्मद्गृहैकदेशे, निवसता वशीकृता गूढमरमत (रम्यत) ममैकस्तनी नाम प्राणेश्वरी।

कविकलशः

कुतो न निरुद्धः।

पुरुषः

रुद्धो यदि कुपिता भविष्यति इति अजानतैवा स्थीयत मया। स्वदेशं प्रति गच्छता तेन पूर्वेद्युर्निशीथे मामपि वञ्चयित्वा पलायितेति। ममेद सम्मुखम्।

कविकलशः

परपुरुषरतया तया किं ते कार्यं गच्छतु नाम कुलटा।

पुरुषः

अपि तु कामं परपुरुषरता तथापि—मदुरसि नम्रोन्नतस्तन एको दूर निपतितस्तस्याः। द्रुतिरपि विपरीतरतेष्वदीपयत् किं ब्रुवे मनोजाग्निम्। अपि च नाभीबिलस्याल्पत्वादुल्लंघ्य बिलान्तरप्रवेशाय। व्रतिनस्तत्कुच फणिनः फणायते नाभिमूलदलम्। अपि च अतिमृदुलाङ्गी पथि खिद्येतेति मं बंहीयसी व्यथा। यस्यां खलु—

अकाण्डोच्चैर्हासैश्चलति लुलिता दंतपटली
भुजामूलं खेदं भजति निजरोमालिकक्षणात् ।
अधोऽधोवायोर्वेगं प्रभवति न सोढुम् गुदगुहा,
स्तनाघातादगत्यामुदरमयते कामपि रुजम् ।।

शिष्यः (अपवार्य)

सं कं जं किं वि पें क इ मादो (शक्यं यत्किमपि गृहीतुमस्मात्)।

कविकलशः

यद्येवं कामकलाविद्यया तामानेष्यामि।

पुरुषः

यद्येवं तत् यथोचित द्रव्यं दीयते।

कविकलशः (अपवार्य)

तेन च परित्यक्ता क्षुत्क्षामा रण्डा स्वयमेवागमिष्यति। (प्रकाशं) दिन त्रये त्वद्ग्रामं प्रापयिष्यामि। क्व पुनस्ते ग्रामः।

पुरुषः

इतो नातिदूरे कितवालयो नाम प्रसिद्धो ग्रामः, यत्र हि पुत्र्या सह वसन्तीं कामपि विधवामधिकृत्य पद्यमिदम्।

जामाता प्रोषितोऽत्र गतेति जननी प्राप्तमन्यं युवानम्
मत्वा कृत्वोपचारान् ऋतुमहविधिमप्यातनोत् पुत्रिकायाः ।
पीठस्थौ तौ युवानौ संविधमुपगतैर्द्रष्टुमुक्ते न चासौ,
जामातेऽन्येषु भीतस्तदुदित कलहान्निर्गतोऽन्तर्धिमाप ।।

अपि च—पुत्र्या सह भाषमाणामन्यामुद्दिश्य पद्यमिदं च-

कस्माल्लब्धं कदल्याः फलशतमधुनेत्यं वयोक्ताह पुत्री-
दत्वारामे युवेदं मदुपरि विहरन् मूर्च्छितां मामता नीत्।
श्रुत्वैवं साह कोपात् कथमुपरि तवाशेत मुग्धे फलानि,
क्षिप्त्वाग्रे तस्य भूयः तदुपरि पतिता मूर्च्छितं तं विधेहि ।।

इत्येवमादीनि बहूनि पद्यानि प्रवृत्तानि तस्मिन् ग्रामे।

कविकलशः (विहस्य)

करस्थमेव पुमर्थ चतुष्टयं तत्र वसताम् गच्छ धनं सम्पाद्यताम्।

पुरुषः (निष्क्रान्तः)

यदि पुनरागच्छेदुक्तं प्रदीयतामिति वक्तुमस्त्यवकाशः।

शिष्यः

ए मे अ (एवमेव)

कविकलशः

वत्स, विचारय समीपे जलमस्ति नवेति। बंहीयसी जलबाधा सोढुं न शक्यते।

शिष्यः (इतस्ततः परिभ्रमन्, उपसृत्य)

णं ति समी अे जलं। (नास्ति समीपे जलम्)

कविकलशः

केवलमाबद्धं चेदलं (मलं) मल्लकं ब्राह्मण्यच्युतिर्भवेत्, किं कर्तव्यम्।

शिष्यः

अंगदोका वि थोरा रंडा पइ अथणं अ चण्डातपाये आ ठलं क स निं गमं, सणमूळ गळिदं सम सळिळं पवहं उंत उरिजां चळेण खे कुण णि सि च इ तं पंथो हि।

(संस्कृतच्छाया)

अग्रतः कापि स्थूला रण्डा पतितस्तनी च चण्डातपाऽऽवेग कूलंकष निर्गमं स्तनमूलगळितं स्वेदसलिलप्रवाहमुत्तरीयाञ्चलेन गृहीत्वा निषिञ्चनि तामभ्यर्थयस्व।

कविकलशः

एवं भवतु (इति सत्वरमुपसर्पन्) (विलोक्य) कथमियं धावति। पतितौ दूरममुष्याः पयोधरवुद्गतौ पतन्तौ च। कुरुत इव वाद्यवादनं तदस्माद्यान सूचकं त्वरितम्। (सवेगमग्रतः स्थित्वा) अञ्जलिं प्रसार्य –

नाभिस्पृशोस्त्वत्कुचयोर्निषिञ्च पाश्चात्यभागांशुकधर्मतोयम्!
अलब्ध तोयस्य तु मूत्रयित्वा ब्राह्मण्यरक्षासुकृतं तवास्तु।

(कर्णं दत्वा) कथमियमतिकुपिता लज्जिता च भाषते दुःश्रवानि वाक्यानि। वत्स, किमिदानीं कर्तव्यम्।

शिष्यः

सिला स अळं घेवेण को वीण बंधणं करेहि।

(संस्कृतच्छाया)

शिलाशकलोत्क्षेपेण कौपीन बन्धनं कुरु।

कविकलशः (कौपीनधारण त्वरया स्रस्तमम्बरं वस्ते)

शिष्यः

आ अरि अ कामदण्डो लु गु ड दोहो दी स इ अं चे रं।

(आचार्य कामदण्डो लगुडदीर्घो वर्तते। आश्चर्यम्)।

कविकलशः

अस्ति कारणं द्राघिम्णः।

शिष्यः

किं णु खिति (किं नु खलु तत्)।

कविकलशः

कदाचित् राजकोपात् श्रीरङ्गपट्टणमागतोऽस्मि।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)।

कविकलशः

तत्र च श्रीरङ्गपट्टणाधिपतिस्सम्भाव्यं मां विद्या पशुकत्सपोत्सुकोऽभूत्।[३]

---

३. अत्यन्त छिन्नभिन्नमस्ति पत्रम्।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)।

कविकलशः

ततो मया कवितादिप्रसङ्गे प्रसक्ते स्वाज्ञानं प्रकटीकृतं स्यादिति कामकलायां महान् परिश्रमोऽस्माकम्। दर्शनेनैव युवतीनां ऊरुमूलस्रवो भवेदिति अभिहिते नाट्यशालागतानां नर्तकीनामानयनाय सौ विदल्लानादिदेश।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)।

कविकलशः

तदनुनिदेशतो नरपतेरतितुङ्गकुचस्थलवलमान मौक्तिकसरद्युतिचन्द्रिकया धवलित दिग्विलासवशमन्थर चंक्रमणधुरि कुसुमायुधमूलबलम्।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)।

कविकलशः

मसृणतरङ्गितस्तिमित कृणितमुदवर्तितचपलमधुराल सस्मित निमीलित पक्ष्मलितम्। दरचल खञ्जरीटमदभञ्जन चञ्चुमनो मम हरति स्म वारवनिताजनदिग्वलवम्।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)।

कविकलशः

कुलदेवतासुलग्नं कुसुमेषोस्तासुवनितासु।

ममहृदयं न ध्याने न देवतायां न मंत्रेऽपि।।

शिष्यः

तद! तदो (ततस्ततः)

कविकलशः

विदितेङ्गितस्स राजा-वाराङ्गनास्समाहूय कीदृशीस्थितीरिति पृष्टवान्। ताश्च नास्माकमवस्था भेदोऽस्मदवलोकनेनेत्यवोचेन्।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)

कविकलशः

तदाऽऽकर्णनादीषदुन्मिषित रोषायितनयनाञ्चलं संशोध्य मुच्यतामयमित्यादिश्याभ्यन्तरं प्रविष्टः।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)।

कविकलशः

तद्भृत्यः कोऽपि पूर्वदिनोपोषिणं परिणतं महिषतर्णाङ्कं भटद्वयगृहीतबाहुयुगलस्य मम कामदण्डमपाययत्। तन्मुखगलितं च तद् वीर्यं सर्वेषामप्यदर्शयत्।

शिष्यः

तदो तदो (ततस्ततः)।

कविकलशः

तेन महता महिषतर्णकेन सुचिरमाकृष्टस्य शेफसो द्राघिमाभूदेतावान्। एवं कथमपि तदा मुक्तो नगरान्निर्गतोऽस्मि। परिणतो वासरः। नात्र सुचिरं स्थातव्यम्।

शिष्यः

कुतो णिमिं ता दो (कुतो निमित्तात)।

कविकलशः

दृश्यते खल्वग्रे क्षुद्रतरुप्रचुरं विपिनं, तस्य च नातिदूरे पायच्चरवसतिर्नाम ग्रामटिका।

शिष्यः

तदो किं (ततः किम्)

कविकलशः

अत एवापराह्णेऽत्र न स्थातव्यमिति ब्रवीमि-लिङ्गं हस्ताग्रबद्धं दधतमभिपतन् खड्गमादाय योधः सस्त्रीकं पातितायां स्वयमनडुहा गोणिकायां निजायाम्। विप्रं तत्प्रापणार्थं पुनरनुनयन ग्राहयित्वा स्वपत्न्या तल्लिङ्गं तत्सहायोधुरमनडुहि तां न्यस्य सायं वनेऽगात्। एवं चोराक्रान्तोऽयं देशः।

शिष्यः

किण्णुण संति पालया (किं न सन्ति पालकाः)

कविकलशः

श्रृण्वत्र राज्ञः पालकस्य च वृत्तम्। द्रव्यादानातिपीनं शिथिलयति पुरो पालकम् प्राक् सुरङ्गा कुड्येऽभूत्तस्य राज्ञो सदसि वचनतो बध्यबुद्धया गृहीतः। श्रेष्ठी कुड्यस्य कर्ता मृदमुपरिदिशं स्तोयदायी कुलालो वारस्त्री स्वर्णकारस्तदुदितवचसा पट्टणं स्वाम्यघाती। एवमत्रान्यप्यद्भुतानि। त्वरितं परिक्रमावः-कथयन्त्यपराह्णमागतं करभारोपित धौतवाससम्। गृहमाविशतामनन्तरं रजकानामधुना रतोत्सवाः। अद्य खलु -

उन्नम्रकक्ष पुटलोम निरुद्धवेगस्तापोन्मिषन्मुखसमीर पुनर्विवृद्धः।
आश्यानघर्मजलसंभृतिपूतिगन्धिरावाति मन्दपवनोधुरितुन्दिलानाम्।।

(प्रतीचीमवलोक्य)

अतिशोणमहस्करस्य बिम्बं गलदीषद्गगनांगणात् प्रतीच्याम्।
कुरुते दिवसश्रियो जरत्या गुदनिर्गत्वरमांसखण्ड शङ्काम्।।

शिष्यः

अंथिमह किं विपुच्छिदव्वम्। (अस्ति मम किमपि प्रष्टव्यम्)।

कविकलशः

किं तत्।

शिष्यः

पंच्छूसा दो आर हि अ बं के णे व्वमग्गेण संचरि अ इ कारणं-ण आणी अ इ।

(संस्कृतच्छाया)

प्रत्यूषादरभ्य वक्रेणैव मार्गेण सञ्चार्यते।

कविकलशः

शृणु रहस्यं-दीनाराणां पञ्चशती दत्ता मह्यं पाठाणकैः। दर्शनं परिहर्तव्यं तेषां दारुणकर्मणाम्। अद्य तु यत्र ऋणादानाय गम्यते तदन्तिकं एव तेषामप्यावासः।

शिष्यः

होदु अतिं तो भो अणकाळो (अतिक्रान्तः खलु भोजनकालः)।

कविकलशः

कदा कविस्तु कलशो दिवाभुङ्क्ते गृहस्थवत्। अर्थापत्तिप्रमाणस्योदाहृतिर्निशि भोजनात्। तत्तमसि, वणिजोऽन्तिकं गत्वा सम्पादनीयमन्नम् (ऊर्ध्वमवलोक्य) अर्कांशु तापादवशं प्रसुप्तं आकाशमालिप्यतमोमषिम्णा। नक्षत्रविम्बं नखतो वलक्षाः नयं विधत्ते समयो विनोदी। किञ्च-आसायं अर्ककिरणज्वरसन्तापिते गगने तारककोरकमिषात् स्फोटक मुकुलं प्ररोहतीव। ततो जनसञ्चारविरामपर्यन्तम्, पुरो वेश्याभवन वेदिकायां उपविशामः (इति नायेनोपविश्य) स्वामिनी (ति) वेश्या वक्तव्या-दर्शनमात्रेण विषनिवारको भिषग्वर आगत इति। (पुरोऽवलोक्य) (प्रविश्य) गृहान्निर्गता पुत्री किमियं ब्रूते मात्रा सह स्वामिनी-देहल्यामुपविष्टा त्वामाकारयतीति। (प्रवेशमभिनीय)

निपतति हि मातुरङ्गे नीव्यां शश्वत्करं प्रसारयति। हा हा रवं च कुरुते हर हर तापाकुलेयमब्जमुखी।

(ततः प्रविशति वेश्या जरती च)

वेश्या

कहिं गच्छि सं दहिं जंतिं व अ ङ्गं इं (कुत्र गमिष्यामि। दह्यत इवाङ्गानि)।

शिष्यः (जनान्तिकम्)

ऊरुमूलम् मि जाद पीडा एसा (ऊरुमूले जात पीडैषा)।

कविकलशः (उपसृत्य)

मा भैषीः-करस्पर्श मात्रेणैव वृश्चिकविषं नाशयामि। कुत्र दष्टेयं वृश्चिकेन।

जरती (सलज्जा तिष्ठति)

कविकलशः (वेश्यां प्रति)

कुत्र ते वृश्चिकपीड़ा-------

वेश्या (उच्चैः सगद्गदं)

महपाविमि (मम पार्श्वे)।

कविकलशः

पापमिति-पार्श्वमिति-किमस्त्यङ्गाङ्गेषु।

जरती

लं ज इठाणिवंथा।

कविकलशः

लज्जयास्थानमवगतम्। करस्पर्श जापनोद्यमिदं वृश्चिकविषं-तत्कथमिदं भविष्यति।

जरती

एं वं चिं ठ इ (एवं वर्तते)।

शिष्यः

आ अरि अगच्छ मृ अ जोग्गं खुठाणं कारं फं सं स।

(संस्कृतच्छाया)

आचार्य गच्छावः अयोग्यं खलु तत् स्थानं करस्पर्शस्य।

कविकलशः (उत्थातुमिच्छति)

वेश्या

चिंठ चिंठ अं ओ ज इ पं से ण णिवं ट इ वि स पीडा तह करिं जं।

(संस्कृतच्छाया)

तिष्ठतु तिष्ठत्वार्यः-यदि स्पर्शेन निवर्त्यते विषपीडा-तथा क्रियताम्।

कविकलशः

स्पर्शमात्रेण सुखं भवेत्। बालक बहिः निर्गच्छ-त्वया च स्तम्भान्तरितया भवितव्यम् (उभौ तथा कुरुतः)।

कविकलशः

(नाट्येन वसनमुत्क्षिप्य योनिरन्ध्रे स्वकराङ्गुलिं प्रवेश्य चालयति)।

वेश्या

पीडामहवामह अ मि कं तो मं जं मि अङ्गुलिं वा वारो (पीडा मम वामभागे, कुतो मध्ये अङ्गुलि व्यापारः)।

कविकलशः

तत्र ह्युप्तानि शौक्लय बीजानि व्याकुला भवेयुरिति।

वेश्या (जनान्तिकं)

(जरतीमवलोक्य) (जननीमवलोक्य) धुंतो इमो अं णं एं करिष्ठवरयिदो।

(संस्कृतच्छाया)

धूर्तोऽयं अन्यदेव कर्तुं व्यवसितः।

शिष्यः (दूरस्थित एव जनान्तिकम्)

णाद वुं तुं ता एसां उं ठेहि (ज्ञात वृत्तान्तैवा उत्तिष्ठ)।

कविकलशः (हस्तं झटित्युन्नमयन्)

दष्टोऽस्मि तेन दुष्टेन वृश्चिकेन (करं धुनोति) नोपसरति विषं, तेन मन्ये अचिरं प्ररूढैरत्रत्यैरेव लोमभिः क्षतं करतलं भवेत्। वत्स, हस्तक्षालनाय जलमानीयताम्।

जरती (सक्रोधं)

किं एंथ ज लं चिट्ठ इ-जिहं चलेण संळेहि कर अ ळं। (किमत्र जलं वर्तते-जिह्वाञ्चलेनक्षालय करतलं)।

कविकलशः

क्षालनाय जलमानीयताम्।

जरती

स्व जिह्वाञ्चलेन क्षालय करतलम् (कवाट बन्धनं कृत्वा उभे निष्क्रान्ते)।

कविकलशः (बहिर्निगमनमभिनीय)

वत्स, महान् कालातिपातो जातः-इतः प्राग्भागे वणिजो गृहम्, निवेदय मदागमनम्।

शिष्यः

तथा (इति परिक्रामन्) एदं पंवणि अघरं जं प ए सामि। (एतत्प्रापणिकस्य गृहं यावत् प्रविशामि)-(इति प्रवेशमभिनयन्, विलोक्य) एसो किदमो अणो गिहि अ तंबूलो सह पुं तेण पदि प प आसि अ पे रं तो चिं ठ इ।

(संस्कृतच्छाया)

एष कृतभोजनो गृहीतताम्बूलः पुत्रेण सह प्रदीपप्रकाशित पर्यन्तस्तिष्ठति। (उपसर्पति)।

(ततः प्रविशति पुत्रेण सह प्रापणिकः)

प्रापणिकः

कुतोऽयमग्रे पद शब्द इव।

शिष्यः (उपसृत्य)

कवि कलशो दुआरं मि वहट्टइ।

(कवि कलशो द्वारे वर्तते)।

प्रापणिकः

कुतो निशीथे तस्यागमनं-भवत्वानीयताम्।

शिष्यः (बहिर्गमनमभिनयति)

(मुसलात्वत्वचं उत्क्षिपन्) निशायामुपयातः। कलशस्तु न व्रजेदगृह्णन्। अपि दत्तं अस्य लोहविषं सलिलम्। सम्प्रति किं पुनर्विधेयम्।

पुत्रः

अयमागत इति पठाणेभ्यश्चेदभिनिवेदनीयम्।

प्रापणिकः

वत्स, सम्यक् चिन्तितं-किं तु ब्राह्मण इव दृश्यते। दारुणाः खलु ते यवनाः।

पुत्रः

तर्हि राजद्वारे प्रेष्यते।

प्रापणिकः (सस्मितं)

द्वयमपि समंजसम्। (इति पुत्रेण सह निष्क्रान्तः)।

(कविः शिष्येण सहोपसर्पति)

कथं कलेः समागमः। समुपविश्यताम्।

कविः

प्रापाणिकः न दृश्यते, पक्षपातो भवतां–अस्ति चेत्कार्यं आहूयतामिति, शिष्यः प्रेषणीयः[४]।

(नेपथ्ये कलकलः)

प्रापणिकः (सभयमिव)

हन्त, चौरैरागतम्। क्रियतां कवाटबन्धनम्।

(ततः प्रविशंति गृहीत विकोशः..............त्रंबुत्री भुजङ्गकवि कलशः विलोक्य सक्रोधं) अरे रे कवि गुद्य उरसि विभ्रन् स्वैरमुद्रांकुलाधम धावेदानीं.............तव हि जननादारभ्यैषां..रेलरुत्वा कामध्वजागागतां त्वं च मधुपिवतथा मांसं खड्गः पुरोधृतस्त्वया।

कविकलशः निर्जीव इव तिष्ठति –

प्रापणिकः

कृतकवाटबन्धनो...

होबाणिजाव ....

......................मातुष्यंतां वैधवेयाः।

---

४. इतः प्रारभ्य पत्राणि प्रायशः विशीर्णानि, स्थाने-स्थाने कीटजग्धानि च। अतः विशृङ्खलितमस्य प्रहसनस्य कथानकमिति महद्कष्टम्।

शिष्यः

पहरह दुं विणीद एसो समूळ ष च ओणिं चं म ए जव ण णिं द रि णं दातव्वंति कहि ओ वि मु..................................कलशं च को नित्यं-वा यवनानां ऋणं दातव्यमिति। कथितोऽपि न जानाति।

पाठाणकाः (शिष्यं मुक्त्वा वीथिमध्ये कविकलशमाकृष्य) यवन स्व विवर्धि.....................कामं वद सन किल भक्षणोत्सुकेस्मिन्नपिनाकौ भुजगं- यथाद्यशेफः तथा कुर्वन्ति।

(ततः प्रविशन्ति राजपुरुषाः)

(यवनानाबद्ध्य पतितं च कविकलशं राजद्वार...................................

................................जगृह प्रवे...............................नियं पु...............सङ्ग..........त्य.....................सदिष्टं.............राज्ञा व्रणबन्धनं क्रियतां प्रातर्दर्शनं गृह्यते इति।) सर्वे (व्रणबन्धनमभिनयन्ति-)

कविकलशः (चिरात् संज्ञां..

....)

पाठाणा उत्थातुमिच्छन्तिः पाठाणाः (बद्धा अपि हसन्ति)

राजपुरुषः

आस्तामयं आवेगः इवस्तरां राजसन्निधौ सर्वं भविष्यति।.......................

......................खमसितमद्यदरी दृश्यते, त्वदीय वदनं; यथा यवनशेफसां संगमादरुणरोचिषाम्। अरुणमिदं पुनर्लक्ष्यते तवाङ्मिव दारुणासि शतपातजात ....पथ्यो आनीयत..................म्

कविकलशः पठाणकैः.....................एष खलु निर्वर्तित काल्यनियमः सह

परिवारेणाधिवसति राजस्थानमण्डपं राजपुरुषः उत्तिष्ठ रा....................मन्दमदं विकटं परिक्रमन्नुपसर्पति।

(ततः प्रविशति राजा सह परिवारेण)

कविकलशः (उपसृत्य)

विजयी भव।

राजा

(स्मितं करोति)।

कविकलशः

दुर्धूराः प्रसवन्ति निष्क.....................ण्ड....................र्हवन्ति परीत्यस्थालीषु पाकस्थलं...................आरामेषु पटोलकाश्च मुकुलन्त्याशासु.................लत् बकस्तोमं...........पालते परिणमन्। चिष्पूर्तयकी.........ण............क..........कविहि.............. मुपा........... त्वान्तरदमन्द सिताम्बुपूरम्। आद्रव्रणस्थगितमाकुल केशचूडमम्बानाता .... लोकतरूपमेतत्।

अन्यः

....लञ्चरितं भवताम्।।

पठाणाः

दीनाराणामपि पञ्चशतं दत्तमस्मै चिरादृणम् ।
न प्रयच्छति भूयो नः पत्रमेतद्विलोक्यताम् ।

सभ्याः

अलं (पत्रं वाचयित्वा)...............................वशगे

बृह..............................।

राजपुरुषः

...............न केवलं वयं प्रहारान् (उपसृत्य सभ्यानां कर्णे) एवमिव सर्वे (हसन्ति)।

कविकलशः

भाषा कवित्व सुरभिण्यदशीयवक्त्रे...नो नेनशे..................सौ......................मेवऋणशुद्धिकृतं स्वलभ्यम्। तादृक सुखं रतिकृतां त्वनुरासभीषु। सर्वे ऋणर्धिर्जातैव शुद्धेरनन्तरम्।

राजपुरुषाः

अनन्तरमेव..............................भ्या नह्यन्या...........................वरित धवै सर्वस्वमपहृत्योच्चाटनयोग्या एते।

राजा

भ्रूसंज्ञयाऽनुमतिं करोति।

यवनाः

....

....यवनास्तुष्टाश्चनिष्क्रान्ताः।

शिष्यः (गतसाध्वसः समुपसृत्य)

सं व इ दं भोजमि पहाद एं व म ए आ चं खि दं।

(सर्वमिदं भविष्यतीति प्रभात एवाख्या...............................चिराश्रि सम्यक् पालितोऽसि राजन् किं ते भूयः प्रियमुपहरामि)।

कविकलशः

त्वदन्तिक समागमाद्यवनखड्गपातोदित व्रणाळिरसुहारिणी संमृणेन शान्ता...............................शेफसन्दूषितं पवित्रं भवन्मुखं

परमि..................सत्वयाचामि किम्।। तथापीदमस्तु।

भरतवाक्यम्

साधुष्वविवेकमत्योर्योगो

गाढश्शुनोरत इ..

....क्तामनीषावतां वाणी

गुह्यचरित्रकीर्तन भुवा दोषेण हासिष्यते।।

शुभमस्तु

उन्मत्तकविकलशप्रहसनम्

सम्पूर्णम्।